श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला का द्वितीय पुष्प

श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला द्वितीय पुष्प

बनारसीविलास

संपादक :-

श्री भंवरलाल जैन न्यायतीर्थ

श्री कस्तूरचंद कासलीवाल एम. ए., शास्त्री

प्रकाशक :-

केशरलाल बख्शी

मंत्री:-श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला

न्यूकालोनी, जयपुर

भाद्रपद सं २०११	प्रति १०००	लागतमात्र मूल्य १।)

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान:—

(१) केशरलाल बख्शी

मंत्री-श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला

"बख्शी भवन" न्यू कालोनी, जयपुर

(२) वीर पुस्तक भण्डार

श्री वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर

☆

☆

मुद्रक—

भँवरलाल जैन

श्री वीर प्रेस, जयपुर

प्रकाशकीय—

आदरणीय श्री पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ द्वारा विख्यात जैन कवि बनारसीदासजी के बनारसीविलास के विषय में ज्ञात हुआ कि यह संग्रह अब प्राप्य नहीं है और इसके प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। मैं इन्हें कबीर की कोटि का कवि मानता हूं। इनकी आध्यात्मिक कविताओं से सचमुच मनुष्य को बडी शांति मिलती है। इनका जैनों में ही नहीं अजैनों में भी प्रचार होने की आवश्यकता है। कवि किसी धर्म देश या जाति के संकुचित दायरे में आबद्ध नहीं किये जा सकते। वे सबके लिए और सभी के हैं। स्वर्गीय मास्टर साहिब नानूलालजी को इनकी आध्यात्मिक रचनायें बहुत प्रिय थीं। इस ग्रंथ के अबतक कई संस्करण निकल जाने चाहिए थे। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस महान कवि की रचनाओं के पठन पाठन का प्रचार औरों की कौन कहे जैन समाज में भी जितना होना चाहिए उतना नहीं है।

जब पुस्तक ही प्राप्य न हो तब पठन पाठन का प्रचार कैसे हो? इस बाधा को दूर करने लिए इस संग्रह को श्री मास्टर नानूलाल स्मारक-कोष की ओर से प्रकाशित करने की अनुमति दी गई। इसका प्रकाशन कितना उपयोगी और सुन्दर हुआ है,

नुसार प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदासजी की ही रचना है। हमारा विचार इसे पहले इस संग्रह में जोड देने का था क्योंकि 'नाटक समयसार' 'अर्ध कथानक' आदि की तरह यह बडी रचना नहीं है जो इस संग्रह के विस्तार को बढा सके, पर अभी इसे विवादास्पद समझकर इस विज्ञास में जोडना उचित नहीं समझा।

इसके सम्पादन में हमें श्रद्धेय पंडित साहब का काफी सहारा मिला है। संग्रह के कठिन शब्दों के अर्थ भी उन्हीं के लिखे हुये हैं। इसके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। ग्रंथमाला के मन्त्री महोदय को भी अनेक धन्यवाद है जिन्होंने इसे प्रकाशित कराने की उदारता दिखलाकर साहित्य सेवा के पुण्य कार्यमें अपना हाथ बटाया। श्रीमान् पं० अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ एवं पं० सुरज्ञानी चन्दजी न्यायतीर्थ को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने पाठ भेद आदि कार्यो में काफी सहयोग दिया है।

भँवरलाल जैन न्यायतीर्थ
कस्तूरचंद कासलीवाल एम. ए. शास्त्री

★ प्रस्तावना ★

हिन्दी भाषा हमारी राष्ट्रभाषा है। उसके व्यापक प्रचार की ओर सभी का ध्यान है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, देहली, अजमेर आदि राज्यों की तो हिन्दी पहिले ही बोलचाल की भाषा थी; किन्तु अब तो भारत के अन्य सभी राज्यों में भी वहाँ के निवासियों को हिन्दी में बोलचाल एवं उसके अध्ययन की शिक्षा दी जा रही है। इसलिये अब यह आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि आगे आने वाले वर्षों में हिन्दी अंग्रेजी भाषा का स्थान ले लेगी।

किन्तु हिन्दी तो सैकड़ों वर्षों से भारत की प्रमुख भाषा के रूप में चली आ रही है। इसकी वृद्धि एवं उन्नति के लिये सैकड़ों एवं हजारों साहित्य-उपासकों ने अपने जीवन का अधिकांश समय इसी पवित्र कार्य के लिये दिया था। इन्हीं ज्ञात एवं अज्ञात साहित्यसेवियों की सेवा के फलस्वरूप आज हमें हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का सम्मान प्रदान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

हिन्दी भाषा के जन्म काल की ओर यदि हम दृष्टि डालें तो हमें पता चलेगा कि हिन्दी का जन्म ७-८ वीं शताब्दी में ही हो गया था। यह पहिले अपभ्रंश के रूप में हमारे सामने आयी और फिर इसी का नया नाम-संस्करण हिन्दी के रूप में हुआ। हिन्दी

साहित्य के प्रमुख विद्वान् डा० रामचन्द्र शुक्ल ने यद्यपि १० वीं शताब्दी से लेकर १४ वीं शताब्दी तक को हिन्दी साहित्य का आदि काल माना है, किन्तु डा० हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने जो वर्त्तमान में हिन्दी के उच्चकोटि के विद्वानों में से हैं, शुक्लजी की इस मान्यता का अपने 'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' में खंडन किया है। उनका मत है कि हिन्दी भाषा १० वीं शताब्दी से भी पूर्व प्रचलित थी और उसका रूप अपभ्रंश भाषा था। इसलिये अपभ्रंश को उन्होंने एवं हिन्दी के महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने पुरानी हिन्दी कहकर सम्बोधित किया है। यही नहीं, किन्तु महाकवि स्वयम्भू को जिन्होंने आठवीं शताब्दी में अपभ्रंश में पउमचरिय (जैन रामायण), हरिवंश पुराण आदि महाकाव्यों की रचना की थी, हिन्दी भापा का 'आदि कवि कहा है। क्योंकि अधिकांश अपभ्रंश साहित्य जैनाचार्यों द्वारा लिखा हुआ है, इसलिये इसी आधार पर उसे हिन्दी भाषा के काल से अलग कर देना अथवा हिन्दी का काल विभाग करते समय उसका कोई ध्यान नहीं रखना हिन्दी साहित्य के इतिहास को असत्य रूप में उपस्थित करना है। माननीय हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने भी अपनी "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" पुस्तक में इसी सम्बन्ध में आपने निम्न उद्‌गार प्रकट किये हैं—"इधर जैन-अपभ्रंश-चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय की मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है। स्वयम्भू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि केवल जैन

होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्र में अविवेच्य हो जाएगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य-सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा। वस्तुतः लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है। कभी कभी ये कहानियां पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों के साथ घुलादी जाती हैं। यह तो न जैनों की निजी विशेषता है और न सूफियों की। हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और बे-बुनियाद बात यह चल पडी है कि लौकिक प्रेम-कथानकों को आश्रय करके धर्म-भावनाओं को उपदेश देने का कार्य सूफी कवियों ने आरम्भ किया था। बौद्धों, ब्राह्मणों और जैनों के अनेक आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिये लोक-कथानकों का आश्रय लिया था। भारतीय संतों की यह परम्परा परमहंस राम-कृष्णदेव तक अविच्छिन्न भाव से चली आई है। केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देख कर यदि हम ग्रन्थों को साहित्य सीमा से बाहर निकालने लगेंगे तो हमें आदिकाव्य से भी हाथ धोना पडेगा, तुलसी-रामायण से भी अलग होना पडेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पडेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा" इस प्रकार हिन्दी भाषा भारत में ८ वीं शताब्दी अथवा इससे भी पूर्व विद्य-मान थी एवं यहाँ के निवासियों की बोलचाल की भाषा थी।

अब एक प्रश्न हमारे सामने पैदा होता है कि ब्राह्मण विद्वानों ने अपभ्रंश भाषा में क्यों नहीं रचनाये लिखीं जब कि जैनाचार्यो ने इस भाषा में विपुल साहित्य का निर्माण किया। जैनाचार्यों ने ही नहीं किन्तु मुस्लिम कवि अब्दुर रहमान ने भी 'सन्देशरासक' नामक एक प्रबन्ध काव्य की रचना की जो शृंगार रस का उत्तम काव्य माना जाता है। हमारी दृष्टि से तो इसका प्रमुख कारण यही था कि वैदिक धर्म में ज्ञान साधना की कुञ्जी सदा ही एक वर्ग विशेष के हाथ में रही है तथा क्योंकि संस्कृत ही एक मात्र देव भाषा कही जाती थी और उसी पर उनका पूर्ण आधिपत्य था इसलिये उन्होंने संस्कृत भाषा को छोड कर अन्य भाषा में लिखना पसन्द ही नहीं किया। क्योंकि अपभ्रंश जन साधारण की भाषा थी इसलिये उन्होंने इस भाषा में साहित्य निर्माण करना उचित नहीं समझा। इतना ही नहीं, उसे स्त्रियों एवं नीच जाति के पुरुषों द्वारा उच्चारण करवाया। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हमें संस्कृत नाटकों में देखने को मिलते हैं। क्योंकि अपभ्रंश साहित्य अधिकांश में जैनाचार्यो द्वारा ही लिखा हुआ है, इसलिये उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई स्थान नहीं देना अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्य के प्रति अन्याय करना है। लेकिन अब हिन्दी साहित्य के विद्वानों का ध्यान इस भाषा के साहित्य की ओर जाने लगा है तथा उसे इतिहास में भी उचित स्थान दिये जाने के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। इसलिये ऐसी आशा की जाती है कि अगले दस वर्ष पश्चात् इसे हिन्दी साहित्य

में उचित स्थान मिल ही जावेगा। लेकिन इसमें कुछ गल्ती जैनों की ओर से भी हुई। उन्होंने अपने साहित्य को प्रकाश में लाने की चेष्टा नहीं की। इसलिये जो कुछ साहित्य यहाँ के विद्वानों को मिला उसी के आधार पर उन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। और जब एक बार कोई अधिकारी विद्वान किसी तथ्य को उपस्थित कर देता है तो वह जल्दी से यों ही नहीं बदला जा सकता और आगे होने वाले उसी को सही मानकर चलने लगते हैं।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य का जन्म आठवीं शताब्दी में होगया था और इसी के आधार पर उसका काल विभाग किया जा रहा है। प्रस्तुत प्रस्तावना में, क्योंकि जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास को ही संक्षिप्त रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है इसीलिये, जैन हिन्दी साहित्य के ही निम्न काल विभाग करके उसका आगे वर्णन किया जावेगा।

अपभ्रंशकाल—	८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक
अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल	१३ वीं १४ वीं शताब्दी
हिन्दी का प्रारम्भिक काल	१५ वीं १६ वीं शताब्दी
हिन्दी का मध्य काल	१७ वीं से १९ वीं शताब्दी
वर्त्तमान काल	२० वीं शताब्दी

अपभ्रंश काल—८ वीं शताब्दी से १२ वी शताब्दी तक:—

८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक के समय को अपभ्रंश काल कहा जा सकता है। हिन्दी इस युग में हमारे सामने

अपभ्रंश के रूप मे विद्यमान थी। हिन्दी का जो वर्त्तमान रूप है वह बहुत कुछ अंश में इसी काल की देन है। अथवा हिन्दी भाषा को वर्तमान रूप प्राप्त करने से पहिले इस युग को पार करना पडा था।

८ वीं शताब्दी से लेकर १२ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा के अनेक महाकवि हुये जिन्होंने अपनी लेखनी से इस भाषा में सर्वोत्तम रचनाओं का निर्माण किया। ८ वीं शताब्दी में होने वाले स्वयम्भू अपभ्रंश के प्रथम महाकवि हैं। इन्होंने पउमचरिय (पद्मपुराण) तथा रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण) ये दो महाकाव्य एवं पंचमीचरिउ नामक प्रबन्ध-काव्यों की रचना की थी। भाव, भाषा एवं शैली जो स्वयम्भू ने इन काव्यों में अपनायी थी वही आगे चल कर हमें हिन्दी काव्यों में मिलती है। हिन्दी के महाकाव्य रामचरितमानस एवं स्वयम्भू के पउमचरिय (जैन रामायण) में कई स्थानों में साम्य है। इसीलिये वर्तमान में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों ने स्वयम्भू को हिन्दी का आदि कवि कहा है। स्वयम्भू से भी पूर्व ६ वीं शताब्दी में मुनि योगीन्दु और हुये थे जिन्होंने योगसार नामक आध्यात्मिक ग्रंथ की रचना की थी। योगीन्दु की भाषा बहुत ही सरल एवं स्पष्ट है। हिन्दी भाषा में जो आगे चल कर दोहा छन्द अत्यधिक रूप मे प्रयोग किया गया वह सब अपभ्रंश की ही देन है। योगीन्दु का एक दोहा देखिये—

अप्प सरुवइ जो रमइ छंडवि सब ववहारू ।

सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भव पारु ॥

स्वयम्भू के पश्चात् १० वीं शताब्दी में होने वाले कवियों में देवसेन, पुष्पदंत, पद्मकीर्त्ति, रामसिंह धनपाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमे देवसेन ने दर्शनसार, तत्त्वसार और सावयधम्म दोहा, पुष्पदन्त ने महापुराण, जसहरचरिउ एवं णाय-कुमारचरिउ, पद्मकीर्त्ति ने पासणाहचरिउ, मुनि रामसिंह ने दोहा पाहुड और धनपाल ने भविसयत्तकहा नामक काव्यों की रचना की थी। वैसे तो इस शताब्दी में होने वाले सभी कवियों की रचनायें उत्कृष्ट हैं किन्तु महाकवि पुष्पदन्त इस युग के सबसे उत्कृष्ट आचार्य हुये जिन्होंने अपनी रचनाओं के बल पर अपभ्रंश भाषा के साहित्य को उच्च स्थान प्राप्त करवाया। इनकी भाव, भाषा एवं शैली सभी उल्लेखनीय है। अपभ्रंश के स्वयम्भू और पुष्पदन्त को हम हिन्दी के तुलसी एवं सूरदास को कोटि में बिठा सकते हैं लेकिन दुःख की बात तो यह है कि ऐसे महाकवियों के साहित्य को भी हिन्दी साहित्य में कोई उचित स्थान नहीं मिला।

पुष्पदन्त एवं सूरदास की कृष्ण बाललीला वर्णन में कितना साम्य है इसका हम एक उदाहरण पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। दोनों कवियों के द्वारा किये हुये वर्णन को पढ़ कर हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनकी भाव, भाषा एवं शैली में कितनी समता है—

रंगंतेण रमंत रमंते मंथउ, धरिउ भमंतु अणंते।
मंदीरउ तोडिवि आवट्टिउं, अद्ध विरोलिउ दहिउ पलोट्टिउ॥
का वि गोवि गोविंदहु लग्गी, एण महारी मंथणि भग्गी।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु, णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु॥

चोरी करत कान्ह धर पाए।
निसि वासर मोहि बहुत सतायो, अब हरि हाथहिं आये।
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तो देख परी हो ललना, तुम्है भलै मैं चीन्हीं।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कहँ जैहो, माखन लेउं मंगाइ।
तेही सो मैं नेकु न खायो, सखा गये सब खाइ।
मुख तन चितै बिहँसि हरि दीन्हो, रिस तब गई बुझाई।
लयौ श्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ। महाकवि सूरदास॥

११ वीं एवं १२ वीं शताब्दी मे होने वाले कवियो में कनकामर, जिनदत्तसूरि, वीर, श्रीचन्द्र, यशःकीर्त्ति और नयनन्दि उल्लेखनीय है। इनमे कनकामर ने करकण्डुचरिय, जिनदत्तसूरि ने चर्चरी, उपदेशरसायन रास एवं कालस्वरूप कुलक, वीर ने जम्बूसामीचरिउ, नयनन्दि ने सुदंसणचरिउ, श्रीचन्द्र ने रत्नकरण्ड शास्त्र, एवं कथाकोश, श्रीधर ने पासणाहचरिउ, भविसयत्तचरिउ एवं सुकुमालचरिउ आदि उल्लेखनीय रचनायें है। महाकवि धवल भी इसी शताब्दी में हुये जिन्होंने अपनी रचनाओं को बहुत ही उत्तम रूप से उपस्थित किया। नयनन्दि के सुदंसणचरिउ भाषा

ही अलंकारमय है। श्लेप और उपमा कवि के अत्यधिक प्रिय अलंकार थे जिनका इस काव्य में स्थान २ पर उपयोग किया गया है। स्वयं वीर ने अपने काव्य जम्बूस्वामी चरिउ को वीर एवं शृंगार रसात्मक कहा है।

अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल—

१२वीं १४वीं शताब्दी को हम अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल कह सकते हैं। यद्यपि इन दो शताब्दियों में अपभ्रंश में अत्यधिक साहित्य की रचना हुई किन्तु उसके साथ अपभ्रंशमय हिन्दी रचनाये भी हमारे सामने आयीं। अपभ्रंश भाषा के कवियों में महाकवि अमरकीर्त्ति, पं० लाखु, हरिभद्र, धाहिल, नरसेन, सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अमरकीर्त्ति ने छक्कम्मोवएस, लाखू ने जिणदत्तचरिय, हरिभद्र ने णेमिणाहचरिय, धाहिल ने पउमसिरिचरिउ, नरसेन ने वड्ढमाणकहा और सिरिपालचरिउ तथा सिंह ने पज्जुण्णकहा की रचना की थी। महाकवि अमरकीर्त्ति का छक्कम्मोवएस बहुत ही सुन्दर एवं सरल काव्य है। इस काव्य मे सामान्य पुरुष के जीवन का चित्रण किया गया है। धाहिल का पउमसिरिचरिउ भी सुन्दर काव्य है जो मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित भी हो चुका है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि इस काल में जैन विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषा में भी रचनाये लिखा जाना प्रारम्भ हो गया था। इसकाल की रची हुई हिन्दी रचनाओं में श्री धर्मसूरि

का जम्बूस्वामी रासा, विनयचन्द्रसूरि की नेमिनाथचउपई, अम्बदेव-कृत संघपतिसमरा रास, और घेल्ह कृत चउवीसी गीत उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनमें से प्रथम तीन रचनाओं की भाषा को राजस्थानी भी बतलाया जाता है किन्तु फिर भी उन्हें प्राचीन हिन्दी रचनाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। क्योंकि प्राचीन हिन्दी और प्राचीन राजस्थानी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जम्बूस्वामीरासा का एक उद्धरण देखिये:—

जंबूदीवि सिरिभरह खित्ति तिहिं नयर पहाणउ।
राजगृह नामेण नयर पहुवी वक्खाणउ।
राज करइ सेणिय नरिंद नर वरहं जु सारो।
तासु तणइ (अति) बुद्धिवंत मति अभयकुमारो॥

चउवीसी गीत भी प्राचीन हिन्दी की एक सुन्दर रचना है जो अभी जयपुर के बडे मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुई है। यह संवत् १३७१ की रचना है तथा घेल्ह इसका कवि है। इसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। आदिनाथ स्वामी के स्तवन का एक पद देखिये—

णाभि नरिंदु नरेसरू मरुदेवी सुकलत्ता।
तसु उरि रिसहु उवरणो अवध वंदाहि कंता॥
पुणि कहि हउं आउस पमाणु जिहि जेती संखा।
आदिनाथ जिण कहिय आउ पुव्व चउरासी लक्खा॥
वृषभ तासु तल लंछणु अति सरूपु सुरतारु।

गोमुख जक्खु चक्केसरू धणुसइ पञ्च सरीरु ॥
अट पयाग तलै दिक्ख वोलइ वच्छ निरूत्तु ।
कैलासह गिरिवर चडेवि निव्वाण पहुंतु ॥

हिन्दी का प्रारम्भिक काल—

१५ वीं और १६ वीं शताब्दी को हम हिन्दी का प्रारम्भिक काल कह सकते हैं। इन दो शताब्दियों में संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के कवियों का ध्यान भी हिन्दी भाषा की ओर जाने लगा तथा उन्होंने संस्कृत और अपभ्रंश के साथ साथ हिन्दी में रचना लिखना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे आचार्यों में भट्टारक सकलकीर्त्ति और ब्रह्म जिनदास का नाम उल्लेखनीय है। ये दोनों ही संस्कृत के काफी ऊंचे विद्वान थे क्योंकि अकेले सकलकीर्त्ति ने संस्कृत में आदिपुराण, पुराणसारसंग्रह, धन्यकुमार चरित्र, यशोधर चरित्र, वर्द्धमानपुराण आदि ग्रन्थों की रचना की थी इसी प्रकार ब्रह्म जिनदास ने भी संस्कृत में १२ से अधिक रचनायें लिखी हैं जिनमें हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, जम्बूस्वामी चरित्र, हनुमच्चरित्र, व्रतकथा कोश आदि उल्लेखनीय हैं। भट्टारक सकलकीर्त्ति की हिन्दी रचनाओं में णमोकारफलगीत एवं आराधनासार अभी तक उपलब्ध हुये हैं। यद्यपि दोनों ही विस्तृत रचनाये नहीं हैं किन्तु हिन्दी भाषा के विकास जानने के लिये ये कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

ब्रह्म जिनदास की हिन्दी रचनाओं पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। इनकी हिन्दी रचनाओं में आदिनाथ

पुराण, श्रेणिकचरित्र, सम्यक्त्वरास, यशोधररास, धनपालरास, व्रतकथाकोष आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी शताब्दी में श्वेताम्बर साधु श्री विनयप्रभ ने गौतमरासा की रचना संवत् १४१२ मे की थी तथा जिनउदयगुरु के शिष्य और ठक्कर माल्हे के पुत्र विद्धणु ने ज्ञानपंचमी चउपई की रचना संवत् १४२३ मे समाप्त की थी। प्रथम रचना में गौतम स्वामी का चरित्र चित्रण किया गया है जिसका वर्णन काफी सुन्दर हुआ है। दूसरी रचना में श्रुतपञ्चमी की कथा का वर्णन किया गया है। गौतमस्वामी रासा के एक पद्य का रसास्वादन कीजिये जिसमें उनकी सुन्दरता का वर्णन किया गया है—

जिम सहकारइं कोयलि टहकउ, जिम कुसुम वनि परिमल बहकइं।
जिम चंदन सौ गंधनिधि, जिमि गंगाजल लहरे लहकइ।
जिम कणयाचल तेजिहिं झलकिइ, तिम गोयम सोभा गनिधो ॥ ३६ ॥

१६ वीं शताब्दी में जैनों ने हिन्दी भाषा में काफी साहित्य लिखा। कुछ उच्च श्रेणी के भी कवि हुए। इन कवियों में संवेगसुन्दर, कक्कसूरि, वीहल्ल, छीहल, धर्मदास, ठक्कुरसी के नाम उल्लेखनीय हैं। संवेगसुन्दर ने सारसीखामणरास की संवत् १५४८ में रचना की थी। इसी प्रकार श्री कक्कसूरि ने संवत् १५७४ में धन्नाचउपई की रचना समाप्त की। वीहल्ल कविने १५७५ मे पञ्चसहेली की रचना की तथा छीहल कवि ने १५८४ में बावनी को समाप्त किया। इसी समय धर्मदास ने भी धर्मोपदेशश्रावकाचार

को संवत् १५७८ में समाप्त किया। रचना की भाषा बडी सुन्दर है। इसमें जैन धर्म के सिद्धान्तों को वडी ही अच्छी तरह समझाया गया है। इस शताब्दी की यह सबसे बडी रचना है। इस का एक उदाहरण देखिये जिसमें कवि ने ग्रन्थ समाप्ति का समय दिया है—

पन्द्रहसै अट्ठहत्तरि-वरिसु, संवच्छरु कुसलह कन सरसु।
निर्मल वैसाखी अखतीज, बुधवार गुनियहु जानीज।
ता दिन पूरो कियो यहु ग्रंथ, निर्मल धर्म भनौ जो पथ।
मंगल करु अरु विघनि हरुनु परम सुखं भविमन कहुं करणु।

इसी समय श्री चतुरुमल कवि ने भो नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह रचना संवत् १५७१ की है तथा इसमें नेमिनाथ स्वामी के विवाह समय की घटना से लेकर राजुल के दीक्षा समय का वर्णन किया गया है।

मध्य काल

१७ वीं १८ वी और १६ वीं शताब्दी जैन हिन्दी साहित्य के लिये ही नहीं किन्तु हिन्दी साहित्य के लिये भी सर्वोत्कृष्ट काल रहा। इन तीन शताब्दियों में हिन्दी साहित्य की चहुँमुखी उन्नति हुई। महाकवि तुलसीदास, बनारसीदास, बिहारी, रसखान, भूषण आदि जितने भी उच्च कवि हुये वे सब इन्ही तीन शताब्दियों में हुये। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य के उत्थान के लिये अपने जीवन की बाजी लगा दी। यदि इन तीन शताब्दियों के साहित्य

को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जावे तो फिर हिन्दी साहित्य निर्जन वन के समान मालूम पडेगा।

जैन हिन्दी साहित्य में भी इन तीन शताब्दियों में अनेक कवि एवं लेखक हुये जिन्होंने हिन्दी साहित्य के भण्डार को भर दिया। दूसरी विशेपता इस काल की यह रही कि १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी गद्य का स्वरूप भी हमारे सामने आया इससे हिन्दी के पठन पाठन एवं स्वाध्याय का और भी प्रचार बढा।

१७ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक कवियों में श्री कुमुदचन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने संवत् १६०० मे लिखना प्रारम्भ किया था। कवि की बाहुवलि छन्द, त्रेपनक्रिया, ऋपभ विवाहलो, शीलगीत आदि रचनायें मिलती हैं, इनमें भरतबाहुबलि छन्द विशेप उल्लेखनीय रचना है।

ब्रह्म रायमल १७ वीं शताब्दी के प्रथम पाद के कवि हैं। सभी रचनाओं की प्रशस्तियों में इन्होंने अपने आपको मुनि अनन्तकीर्त्ति का शिष्य लिखा है। नेमीश्वररास कविवर की उपलब्ध रचनाओं में प्रथम रचना है। इसका रचना संवत् १६१५ है। इसके अतिरिक्त हनुमंतकथा, प्रद्युम्नचरित्र, सुदर्शनरासो, निर्दोषसप्तमीव्रतकथा, श्रीपालरासो, भविष्यदत्त कथा आदि रचनाये उपलब्ध हैं।

पाण्डे जिनदास ने संवत् १६४२ में जम्बूस्वामी चरित्र की रचना

समाप्त की। इसके अतिरिक्त जोगीरासा एवं ज्ञानसूर्योदय नाटक इनका और मिलता है।

कविवर रूपचन्दजी १७ वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवि थे। उपलब्ध रचनाओं के आधारपर यह कहा जा सकता है कि इनकी कवित्व शक्ति बहुत ही उच्च श्रेणी की थी। कविवर ज्ञान कथा के रस में भीगे रहते थे। परमार्थ चर्चा ही उनका मुख्य ध्येय था। महाकवि बनारसीदास ने इनको आगरा नगर की प्रमुख तथा प्रसिद्ध ज्ञानगोष्ठी का प्रथम विद्वान होना लिखा है। आपने जो कुछ साहित्य लिखा अधिकांशतः वह आध्यात्मिक रस से अलंकृत किया हुआ है। आपकी अभी तक परमार्थदोहाशतक, परमार्थ गीत, पदसंग्रह, गीत परमार्थी, पंचमंगल, नेमिनाथरास आदि रचनाये प्राप्त हुई हैं। सभी रचनायें उच्च कोटि की हैं। इसका एक उदाहरण देखिये—

गुरु बिनु भेद न पाइये, को पर को निज वस्तु
गुरु बिनु भव सागर विषै, परत गहै को हस्तु ॥
रूपचन्द सद्गुरनि की, जन बलिहारी जाइ।
आपुन जे सिवपुर गहे, भव्यनि पंथ दिखाइ ॥

उक्त कवियों के अतिरिक्त इस शताब्दी में होने वाले कवियों में ब्रह्म गुलाल, त्रिभुवनचन्द्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाकवि बनारसीदास भी इसी शताब्दी के कवि थे, जिनका स्थान जैन हिन्दी साहित्य में सर्वोत्कृष्ट है। इनका पूर्ण परिचय आगे दिया जावेगा।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है इस शताब्दी में हिन्दी गद्य की रचनायें भी प्रारम्भ हो गयी थीं। इस दिशा में सर्व प्रथम रचना समयसार की हिन्दी गद्य टीका है जिसको बैराठ (जयपुर) में राजमल्ल ने लिखी थी। इसको इन्होंने संवत् १६०० के आसपास समाप्त की थी। महाकवि बनारसीदासजी ने भी इन्हीं की टीका के आधार पर समयसार नाटक की रचना की थी।

इसके अतिरिक्त पं० अखयराज और श्री पाण्डे हेमराज का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। पं० अखयराज कृत चतुर्दश-गुणस्थानचर्चा, विषापहारस्तोत्रभाषा, कल्याणमन्दिरस्तोत्र टीका, भूपाल चौबीसी टीका के नाम उल्लेखनीय हैं। चतुर्दश-गुणस्थानचर्चा अखयराज की स्वतन्त्र रचना है। इसी तरह पाण्डे हेमराज ने हिन्दी गद्य में प्रवचनसार वचनिका, पञ्चास्ति-काय टीका, नयचक्र वचनिका, कर्मकाण्ड टीका आदि हिन्दी ग्रन्थों की रचना की थी। ये १७ वीं शताब्दी के अन्तिम पाद एवं १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ के कवि थे।

१८ वीं शताब्दी में महाकवि बनारसीदासजी की रचनाओं के सामने आने के पश्चात् जैन कवियों की काव्यत्व शक्ति भी कुछ विकसित हुई। यद्यपि उन्होंने अपनी रचनाओं का अधिकांश विषय धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता तक ही सीमित रखा किन्तु इन रसों में ही उन्होंने अपनी काव्यत्व शक्ति प्रदर्शित की।

इस शताब्दी के श्रेष्ठ कवियों में भैय्या भगवतीदासजी का नाम लिया जा सकता है। ये आगरा के रहने वाले थे। इन्होंने अनेक विषयों पर अपनी रचनाएँ लिखी हैं। कविवर हिन्दी, संस्कृत, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे विद्वान् थे। आपकी रचनायें प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं। कविवर का 'ब्रह्मविलास' उनकी विभिन्न रचनाओं का संग्रह है। इन्होंने अपनी रचनाओं में जन-कल्याण की भावना प्रदर्शित की है। किसी को रिझाने के लिये अथवा अपने आप के आनन्द के लिये कविता रचने का इनका बिलकुल ध्यान नहीं था। इनके एक पद का नमूना देखिये जो कितना मधुर एवं सरल है—

कहा परदेशी को पतियारो।
मन माने तब चलै पंथ को, सांझ गिनै न सकारो।
सबै कुटुम्ब छाड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो॥
दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो॥
धन सों राचि धरम सौं भूलत, झूलत मोह मंझारो।
इहि विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो॥
सांचे सुखसौं विमुख होत हो, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे भइया, आप ही आप संभारो॥

भैय्या भगवतीदासजी के समकालीन महान संत आनन्दघन हुये। संत-साहित्य के विशेषज्ञ एवं अध्ययनशील विद्वान्

क्षितीमोहनसेन ने उन्हें जनमर्मी कवि की संज्ञा से सम्बोधित किया है। राजस्थानी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा के शब्दों मे "आनन्दघनजी द्वारा रचित चतुर्विंशति जिनस्तवनों एवं पदों में अध्यात्म का अखंड प्रवाह प्रवाहित हुआ है। आपके पदों और कबीर एवं सुन्दरदास के पदों में बहुत कुछ समता मिलती है।

बुलाकीदासजी भी इस शताब्दी के अच्छे कवि थे। इनकी माता का नाम जैनी एवं पिता का नाम नन्दलाल था। कवि की साहित्यिक प्रगति में इनकी मात 'जैनी' का विशेष हाथ था। इनकी दो रचनाये उपलब्ध होती हैं एक महाभारत (पाण्डवपुराण) और दूसरा प्रश्नोत्तर श्रावकाचार इनकी दोनों ही रचनाओं में कहीं २ काव्यत्व के अच्छे दर्शन होते हैं।

कविवर भूधरदासजी का स्थान सम्पूर्ण जैन साहित्य में उत्कृष्ट है। महाकवि बनारसीदासजी के पश्चात् इन्हीं का नाम गिनाया जा सकता है। इन्होंने पार्श्वपुराण, भूधरशतक एवं अनेक स्फुट पद्यों की रचना की थी। ये तीनों ही रचनाये जैन साहित्य में ही नहीं किन्तु हिन्दी-साहित्य में भी उल्लेखनीय स्थानवाली हैं। इनका पार्श्वपुराण एक स्वतन्त्र रचना है जो प्रसाद एवं माधुर्य गुण से ओतप्रोत है इसको इन्होंने संवत् १७८९ में समाप्त किया था।

कविवर भूधरदासजी के ही समकालीन श्री द्यानतरायजी हुये। इनकी रचनाओं का संग्रह "धर्मविलास" है जो संवत् १७८० में पूर्ण हुआ था। ये भक्तिमार्ग वाले कवि थे। हिन्दी मे इन्होंने

अनेक पूजाओं की रचना की जो आज प्रत्येक स्थान पर पढ़ी जाती हैं। इनकी भाषा एवं शैली अच्छी है जिसमें कठिन विषय को भी सरल करके समझाया गया है।

१८ वीं शताब्दी में उक्त कवियों के अतिरिक्त मनोहरलाल, खरगसेन, जोधराज गोदीका, खुशालचन्द काला, किशनसिंह आदि और भी कवि हुये। इनमें मनोहरलाल ने धर्मपरीक्षाभाषा, खरगसेन ने त्रिलोक दर्पण कथा, जोधराज ने सम्यक्त्वकौमुदी, धर्मसरोवर, पद्मनन्दि पंचविंशति आदि तथा किशनसिंह ने क्रिया-कोश आदि की रचनायें की थी। ये सभी रचनायें कितनी ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।

१६ वीं शताब्दी में उल्लेखनीय कवियों में पं० दौलतरामजी, पं० टोडरमलजी, पं० जयचन्दजी छाबडा, वृन्दावनजी आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। इस शताब्दी में पद्य साहित्य की अपेक्षा गद्य साहित्य का अधिक निर्माण हुआ। हिन्दी भाषा के प्रचारा-धिक्य से एवं स्वाध्यायप्रेमियों की मांग के अनुसार विद्वानों ने संस्कृत एवं प्राकृत अपभ्रंश ग्रन्थों का सरल हिन्दी में अनुवाद अथवा भाषान्तर किया जिससे हिन्दी भाषा के ग्रन्थों के प्रचार में एवं स्वाध्याय में उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

पं० दौलतरामजी ने पुण्याश्रवकथाकोश, क्रियाकोश, अध्यात्म-बारहखडी, वसुनन्दिश्रावकाचार भाषा, पद्मपुराणभाषा, हरिवंश-पुराणभाषा, आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इनकी भाषा बहुत

सरल है। इस पर ढूंढारी भाषा का अत्यधिक प्रभाव है। जैन समाज में इनके लिखे हुये ग्रन्थों की स्वाध्याय का अत्यधिक प्रचार है। वे राजस्थान में ही नहीं पढे जाते किन्तु गुजरात में एवं दक्षिण में भी उनका अत्यधिक प्रचार है।

पण्डितप्रवर टोडरमलजी भी इसी शताब्दी के रत्न हैं। अपने समय के ये सर्व श्रेष्ठ साहित्यिक, विद्वान् एवं समाज सुधारक थे। ये केवल २८ वर्ष तक ही जीये और इतने से अल्पकाल में गोम्मटसारवचनिका, त्रिलोकसारवचनिका, आत्मानुशासनभाषा, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषा एवं मोक्षमार्गप्रकाश आदि ग्रन्थों की रचनायें की। आप का ज्ञान पारदर्शी था। इसीलिये आप गोम्मटसार एवं त्रिलोकसार जैसे गूढ अर्थ वाले ग्रन्थों की सरल एवं बोधगम्य वचनिकायें लिखीं। मोक्षमार्ग प्रकाश आपकी स्वतन्त्र रचना है इसमें जैनसिद्धान्त का गंभीर विवेचन किया गया है। इसकी भाषा भी ढूंढारी है। आजकल के हिन्दी गद्य से वह बहुत कुछ मिलती जुलती है। क्रिया पदों और कारक प्रत्ययों के बदलने मात्र से ही वह आजकल की खडी बोली बन सकती है।

पं० जयचन्दजी छाबडा का गद्य लेखकों में महा पंडित टोडरमलजी एवं दौलतरामजी के बाद का स्थान है। इन्होंने सर्वार्थसिद्धि, परीक्षामुख, द्रव्यसंग्रह, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा, समयसार, देवागमस्तोत्र, अष्टपाहुड, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों की भाषा वचनिकायें लिखी। इनकी गद्य शैली भी उत्तम है।

श्री वृन्दावनजी १६ वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। उन्होंने छन्दशतक, प्रवचनसार टीका, चतुर्विंशतिजिनपूजापाठ, तीस-चौबीसी-पूजापाठ, वृन्दावन-विलास आदि रचनायें की थीं। इनमें स्वाभाविक कवित्व शक्ति थी। प्रत्येक विषय को सरल शब्दों में प्रस्तुत करना इन्हें खूब आता था। इसीलिये इनकी कविता में स्वाभाविकता और सरलता दोनों ही मिलती हैं।

इसी प्रकार जैन हिन्दी साहित्य में और भी कवि एवं लेखक हुये जिन्होंने अपनी रचनायें लिखकर हिन्दी भाषा के प्रचार एवं पठनपाठन में अत्यधिक सहयोग दिया। यद्यपि अधिकांश जैन कवियों ने अपनी रचनाओं के विषय को धर्मप्रधान एवं अध्यात्म-प्रधान ही रखा है किन्तु इस प्रकार के साहित्य में भी कितने ही स्थानों पर तो हमें उत्तम काव्य के दर्शन होते हैं। इसलिये हिन्दी साहित्य के विद्वानों को चाहिये कि वे जैन साहित्य के खोज एवं प्रचार की ओर ध्यान दें एवं उसकी रचनाओं को उचित स्थान देने का प्रयत्न करें।

महाकवि बनारसीदास

१८ वीं शताब्दी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस शताब्दी में तुलसीदास, केशवदास, बनारसीदास, बिहारी, भूषण, सेनापति, रहीम आदि कितने ही महाकवि हुये जिन्होंने हिन्दी भाषा में सर्वोत्कृष्ट रचनायें निबद्ध करके उसे अमर बना दिया। जैन कवि बनारसीदास भी इसी शताब्दी के महान प्रतिभाशाली कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में त्रिकालाबाधित रचनायें लिखकर इसके साहित्य भण्डार की श्री वृद्धि की है। वास्तव में यदि इस शताब्दी में ये कविगण न हुये होते तो हिन्दी भाषा इतनी जनप्रिय भाषा न बनी होती जितनी वह आज है।

बनारसीदासजी का स्थान हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य में कबीर के समकक्ष कहा जा सकता है। बनारसीदासजी की काव्यत्व शक्ति नैसर्गिक थी। इनकी सूझ निराली थी तथा इनकी शैली में आकर्षण था। यही कारण है कि इनके द्वारा लिखे हुये साहित्य को जैन हिन्दी साहित्य मे सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया। लेकिन दुःख के साथ लिखना पडता है कि हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक विद्वानों ने अपने हिन्दीसाहित्य के इतिहास में नामोल्लेख के अतिरिक्त इनकी सेवाओं का कोई मूल्यांकन नहीं किया जब कि इनके द्वारा लिखा साहित्य हिन्दी के अनेक कवियों के साहित्य के

समकक्ष रखा जा सकता है। कविवर द्वारा लिखा हुआ अर्द्धकथा-नक तो अपने ढंग की प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट प्राचीन रचना है।

वनारसीदासजी का जन्म संवत् १६४३ में जौनपुर नगर में हुआ था। प्रारम्भ में इनका नाम विक्रमाजीत था लेकिन वाद में वनारस के एक पुजारी के कहने से इनका नाम वनारसीदास रखा गया। कवि के पिता का नाम खरगसेन था। ये श्रीमाल जाति के थे और वीहोलिया इनका गोत्र था। अर्द्धकथानक में लिखा है कि विहोली गांव राजपूतों की एक वस्ती थी जो एक जैन मुनि के उपदेश से जैन वन गयी थी। इसने अपने आपको श्रीमाल जाति एवं वीहोलिया गोत्र से प्रसिद्ध किया।

वनारसीदासजी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। वचपन में इनका लालन पालन वडे लाड़ प्यार से किया गया था। ७ वर्ष की अवस्था से इन्होंने विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। इनके गुरु कविवर रूपचन्दजी थे जो स्वयं ही पहुँचे हुये आध्यात्मिक कवि थे। इनकी बुद्धि प्रखर थी तथा विषय को जल्दी ही ग्रहण करलेती थी, इसलिये थोडे अर्से में ही इन्होंने काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके पश्चात् इन्होंने पढना वन्द कर दिया लेकिन १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने फिर पं० देवीदासजी के पास पढना प्रारम्भ किया तथा नाममाला, ज्योतिषशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं कोकशास्त्र का थोडा अध्ययन किया।

वनारसीदासजी का प्रथम विवाह १० वर्ष की अवस्था में हुआ

था। इनकी यह पत्नी बडी सुशीला संतोषी एवं पतिसेवापरायणा थी, लेकिन विवाह के करीब १५-१६ वर्ष बाद इसकी मृत्यु हो गयी। इससे बनारसीदासजी को बहुत दुःख हुआ। इसके पश्चात् कविवर के और भी दो विवाह हुये किन्तु वे अपनी प्रथम पत्नी के गुणों का कभी विस्मरण नहीं कर सके। तीनों पत्नियों से आपके ६ बालक हुये किन्तु सभी बालक पैदा होने के कुछ दिनों बाद ही मर गये। कविवर का अन्तिम बच्चा ६ वर्ष का होकर मरा। इस बालक को खोकर तो इन्हें जीवन से एक दम निराशा हो गयी और उन्हें संसार बहुत भयानक प्रतीत होने लगा, जैसा कि उनके निम्न उद्गार से मालूम पडता है—

नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोय।
ज्यौं तरुवर पतझार ह्वै रहें ठूठ से दोय॥

युवावस्था के पदार्पण करते ही बनारसीदासजी अनंगरंग में मस्त हो गये थे। इनके सिर पर इश्क़बाजी का नशा चढ गया था। रातदिन इनका ऐसी ही बातों की चर्चाओं में व्यतीत होता था। इसी समय इनको कविता करने का भी शौक हो गया था। लेकिन इश्कबाजी में फंसे रहने के कारण ये श्रृंगाररस की ही अधिकांश कवितायें लिखने लगे। इसी समय इन्होंने एक हजार पद्यों वाली एक पुस्तक की भी रचना की। यद्यपि इस पुस्तक में सभी रसों से सम्बन्धित कविताएं थीं लेकिन सबसे अधिक इस पुस्तक में जो सामग्री थी उसका सम्बन्ध श्रृंगाररस

से ही था। बनारसीदासजी कितने ही साधु सन्यासियों के जाल में फंसे रहे और जैसा उन्होंने कहा वैसा ही बनारसीदास जी ने किया। संवत् १६६२ में बादशाह अकबर की मृत्यु हुई। मृत्यु के समाचार सुनकर बनारसीदासजी को इतना अधिक दुःख हुआ कि वे यह समाचार सुनते ही गिर पडे। इसके बाद उनके जीवन में परिवर्त्तन आया। वे साधु सन्यासियों के चक्कर से निकल गये तथा शृंगाररस के स्थान में आध्यात्मिक रस का गुण-गान करने लगे। उनको अपने अबतक के व्यतीत जीवन से घृणा हो गयी तथा अबतक उन्होंने जो शृंगाररस से सम्बन्धित कविताओं की रचना की थी उसे भी उन्होंने गोमती नदी में सदा के लिये बहा दिया। हिन्दी साहित्य एवं जैन साहित्य दोनों के लिये ही यह एक अप्रिय-घटना रही। यदि यह रचना बची हुई होती तो जैन कवियों पर जो केवल आध्यात्मिक होने का आरोप लगाया जाता है वह सदा के लिये बच जाता। इस के बाद तो कवि का सम्पूर्ण जीवन ही दूसरी दिशा में प्रवाहित होना था जैसा कि स्वयं कवि ने कहा है—

> तिस दिन सों बनारसी, करी धर्म की चाह।
> तजी आसिखी फासिखी पकरी कुल की राह॥

व्यापारिक जीवन—

२३ वर्ष तक बनारसीदासजी ने कोई काम धन्धा प्रारम्भ नहीं किया। २४ वें वर्ष में कवि के पिता खरगसेनजी ने इन्हें घर का

सारा काम काज सम्हला दिया। अभी तक इनको कोई काम धन्धा नहीं करना पडा था इसलिये व्यापार में ये अभी अन-भिज्ञ ही थे। कुछ दिनों पश्चात् इन्होंने आगरे में जाकर व्यापार कार्य करना चाहा और घर से दो मुद्रिका, चौबीस माणिक, नौ नीलम, बीस पन्ना और ४ गांठ फुटकर चुनी, २० मन घी, २ कुप्पे तेल, २०० रुपयों का कपडा तथा अन्य सामान लेकर आगरा के लिये रवाना हो गये। मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये ये आगरे पहुंचे, लेकिन व्यापार में अनभिज्ञ होने के कारण इन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली और थोडे ही दिनों मे घर से लायी हुयी सारी सम्पत्ति को घाटे मे देकर स्वयं दरिद्र बन बैठे। इसके बाद इन्होंने आगरे मे ही एक दूसरे व्यापारी के साथ साझे मे कार्य किया लेकिन उसमें भी कोई सफलता नहीं मिली और जितना रुपया कमाया वह सब खाने पीने में ही खर्च होगया। फिर नरोत्तमदास नामक एक अन्य व्यापारी के साथ खैराबादी कपडे का व्यापार कार्य प्रारम्भ किया लेकिन उसमे भी उल्टा घाटा ही उठाना पडा। तब इन्होंने अपना स्वतन्त्र ही कार्य किया और इसमें इन्हें सफलता मिली तथा कुछ ही समय मे इन्होंने अच्छा धन कमा लिया। अब ये आगरे में ही रहने लगे।

विद्वानों का संपर्क एवं सहयोग—

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि बचपन में बनारसीदासजी को प्रसिद्ध आध्यात्मिक कवि रूपचन्दजी से तथा फिर पं० देवी-

दासजी से अध्ययन करने का अवसर मिला था। आगरे में इनका अर्थमल्लजी से संसर्ग हुआ। अर्थमल्लजी सदा ही अध्यात्म रस में सने हुये रहते थे। इन्होंने बनारसीदासजी को पं० राजमल्ल कृत हिन्दी बालावबोधिनी टीका सहित समयसार नामक ग्रन्थ स्वाध्याय करने को दिया। इसका स्वाध्याय करने के पश्चात् ये निश्चय नय के एकान्त श्रद्धानी बन गये और बाह्य क्रियाओं को सर्वथा छोड बैठे। लेकिन जब इन्हें पं० रूपचन्दजी से गोम्मटसार नामक सिद्धान्त ग्रन्थ पढने का सौभाग्य मिला तब इनको वस्तु-स्थिति का बोध हुआ। आगरे में इन्हें पं० रूपचन्दजी के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के साथ रहने का भी अवसर मिला था। इन विद्वानों में चतुर्भुजजी, भगवतीदासजी, धर्मदासजी, कुंवरपालजी और जगजीवनजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान आध्यात्मिक चर्चा में गहरा रस लिया करते थे और रात दिन उसी की चर्चा में मस्त रहते थे।

जैन विद्वानों के अतिरिक्त उन्हें अन्य विद्वानों से भी भेंट करने का अवसर मिला था ऐसी भी कितनी ही किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इन विद्वानों एवं सन्तों में सुन्दरदासजी एवं तुलसीदासजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सुन्दर ग्रन्थावली के सम्पादक पं० हरिनारायणजी शर्मा बी० ए० ने ग्रन्थावली की भूमिका में एक स्थान पर लिखा है—"प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदासजी के साथ सुन्दरदासजी की मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजी के साथ उनका संसर्ग हुआ था। बनारसीदासजी

सुन्दरदासजी की योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारों से मुग्ध हो गये थे। तभी उतन श्लाघा मुक्तकंठ से उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी तो थे। इनके गुणों से सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये इसी से वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।"

इसी प्रकार बनारसीदासजी की महाकवि तुलसीदासजी से भी कितनी ही बार भेंट हुई थी। यह भी कहा जाता है कि इनको महाकवि ने रामायण की एक प्रति भेंट की थी। कुछ वर्षों के बाद जब कविवर की गोस्वामीजी से भेंट हुई तब तुलसीदासजी ने रामायण के काव्य सौदर्य के सम्बन्ध में जानना चाहा जिसके उत्तर में कविवर ने प्रसन्न होकर निम्न कविता उसी समय सुनाई थी—

विराजै रामायण घट माहिं।

मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहिं॥

आतमराम ज्ञान गुन लछमन, सीता सुमति समेत।

शुभोपयोग वानरदल मंडित, वर विवेक रण-खेत॥

ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयादिति भाग।

भई भस्म मिथ्यामति लंका, उठी धारणा आग॥

जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरें निकांछित सूर।

जूझे राग द्वेष सेनापति संशयगढ चकचूर॥

विलखत कुम्भकरण भव विभ्रम, पुलकित मन दरयाव।

थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबंध समभाव॥

भूमित मंदोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान ।
घटी चतुर्गति परनति सेना, छुटे छपक गुनबान ॥
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय विभीषन दीन ।
फिरै कबंध मही रावन की प्राण भाव शिर हीन ॥
इह विधि सकल साधु घट अंतर, होय सहज संग्राम ।
यह विवहार दृष्टि रामायन केवल निश्चय राम ॥

तत्कालीन मुगल बादशाह और बनारसीदासजी—

बनारसीदासजी ने अपने जीवन काल मे तीन मुगल बादशाहों का शासन देखा था। बादशाह अकबर के ये काफी प्रशंसक थे इसीलिये उसकी मृत्यु के समाचार सुनकर बनारसीदासजी को अत्यंत दुःख हुआ और वे बैठे २ ही गिर पडे। जहांगीर के सामने भी इनको एक बार उपस्थित होना पडा था और उन्होंने "ज्ञानी बादशाह ताको मेरी तसलीम है" इन शब्दों मे बादशाह को सलाम किया था। शाहजहां बादशाह के दरबार में तो इन्हें प्रतिदिन उपस्थित होना पडता था और वहाँ जाकर इन्हें बादशाह के साथ शतरंज खेलनी पडती थी और अन्त में इन्हें बडी कठिनता से छुटकारा मिला था।

कवि का अन्तिम जीवन—

अर्ध कथानक में दिये ५५ वर्ष के जीवन चरित के अतिरिक्त आगे के जीवन के सम्बन्ध में कोई निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता वे कितने वर्ष तक और जीये। लेकिन इतना अवश्य

है कि उनका अन्तिम जीवन सुख से व्यतीत हुआ होगा। इस जीवन में उन्होंने कौनसे साहित्य का निर्माण किया अथवा केवल आध्यात्मिक चर्चाओं में ही अपना जीवन व्यतीत किया इस सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

बनारसीदासजी की रचनायें—

उपलब्ध साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बनारसीदासजी ने अपने जीवन में नवरसपद्यावलि, नाटक समयसार, बनारसीविलास, नाममाला और अर्द्ध कथानक नामक ग्रन्थों की रचना की थी। इन सभी का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है—

नवरसपद्यावलि—

नवरसपद्यावलि की रचना कविवर ने अपनी युवावस्था में की थी। उस समय वे अनंगराग में मस्त थे और शृंगार रस का आस्वादन ही उनका प्रमुख ध्येय था। उसी समय उन्होंने एक हजार पद्योंवाली रचना लिखी थी। यद्यपि इसमें सभी रसों वाले पद्य थे लेकिन शृंगार रस से सम्बन्धित पद्यों की विशेषता थी। जब कवि का इश्कबाजी का नशा दूर हुआ तो उन्हें अपने द्वारा लिखी हुई नवरसपद्यावलि से भी एक दम घृणा हो गयी। और एक दिन अपनी सम्पूर्ण रचना को गोमती नदी में बहा दिया। हिन्दी जगत् के लिये एवं विशेषत. हिन्दी जैन साहित्य के लिये उनका यह कार्य अच्छा नहीं रहा। यदि यह पुस्तक आज हमे उपलब्ध होती तो जैन साहित्य केवल आध्यात्मिक अथवा धार्मिक है यह कहकर के ही उसकी

उपेक्षा नहीं की जाती। बनारसीदासजी ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में निम्न लिखित पद्य लिखा है—

पोथी एक बनायी नयी, मित हजार दोहा चौपई।
तामै नवरस रचना लिखी, पै विसेस वरनन आसिखी।
ऐसे कुकवि बनारसी भए, मिथ्या ग्रंथ बनाए नए।

नाटक समयसार—

नाटक समयसार बनारसीदासजी की प्रमुख एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है। जैन हिन्दी साहित्य में इस रचना का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। अध्यात्म रस का यह अपूर्व ग्रन्थ है जिसको एक बार पढना प्रारम्भ करने के पश्चात् कभी छोडने को जी नहीं चाहता। इसकी रचना में कवि ने जो अपनी अपूर्व काव्य शक्ति का परिचय दिया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। इसका प्रत्येक पद आत्मा पर अपना सीधा असर डालता है। उदाहरणार्थ दो पद्य उपस्थित किये जाते हैं—

राम रसिक अरु राम रस कहन सुनन को दोइ।
जब समाधि परगट भई तब दुविधा नहिं कोइ॥

× × × ×

जाके घर समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानही सो अपराधी जीव॥

समयसार की रचना आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत भाषा में की थी। उस पर आचार्य अमृतचन्द्र ने संस्कृत टीका एवं कलशों

की रचना की। १६-१७ वीं शताब्दी में पांडे राजमल्लजी ने हिन्दी गद्य में बालावबोधिनी टीका लिखी और इन्हीं रचनाओं के आधार पर बनारसीदासजी द्वारा हिन्दी पद्यात्मक समयसार की रचना की गयी। यद्यपि कवि की यह केवल एक प्रकार से समयसार पर हिन्दी टीका मात्र ही है लेकिन उसमें अपनी अपूर्व काव्य शक्ति से इतनी विशेषता लादी कि उनकी यह रचना सर्वथा मौलिक मालूम देने लगी। इसमें कवि ने शब्दों का चुनाव एवं चयन इतना सुन्दर किया है कि पाठक उसमें अपने आपको खोया हुआ अनुभव करने लगता है।

पूरे समयसार में ३१० दोहा सोरठा, २४३ सवैय्या इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैय्या तेईसा, २० छप्पय, १८ कवित्त, ७ अडिल्ल एवं ४ कुण्डलिया हैं। इस प्रकार सब मिला कर इसमें ७२७ छन्द हैं। यह रचना संवत् १६६३ में आसोज शुक्ला दशमी रविवार के दिन समाप्त हुई थी।

आदरणीय नाथूरामजी प्रेमी के शब्दों में समयसार को भाषा साहित्य के अध्यात्म की चरम सीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। आगे आने वाले जैन कवि एवं लेखकों पर समयसार में वर्णित आध्यात्मिकता का जो का प्रभाव पडा है वह उल्लेखनीय है।

नाममाला—

महाकवि धनंजय कृत संस्कृत नाममाला का यह हिन्दी पद्य में भाषान्तर है। कवि ने संस्कृत पद्यों का हिन्दी अनुवाद बहुत ही

सरल एवं उत्तम रीति से किया है। हिन्दीकोश-साहित्य में यह सर्वथा उल्लेखनीय रचना है। हाईस्कूल तक के विद्यार्थियों के लिये दो शब्दों का ज्ञान बढ़ाने के लिये यह अत्यधिक उपयोगी पुस्तक है। उदाहरणार्थ विद्वान् के नामों का वर्णन करने वाले पद्य देखिए।

निपुण विलक्षण विबुध बुध विद्याधर विद्वान्
पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥
कलावन्त, कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद तज्ञ गुणीजन संत ॥

अर्धकथानक—

यह कवि द्वारा लिखा हुआ स्वयं का जीवन चरित्र है। कवि ने इसमें अपने ५५ वर्ष की जीवन घटनाओं को उसी रूप में उपस्थित किया है। इससे यह सिद्ध होता कि भारतीय विद्वान् भी आज से ३०० वर्ष पहिले अपने जीवन इतिहास का महत्त्व समझते थे। कवि का यह आत्म-चरित्र ठीक आज जैसे आत्म-चरितों के समान लिखा गया है। कविने अपने जीवन की किसी भी घटना को लिखने में हिचकिचाहट नहीं की है। हिन्दी के प्राचीन आत्म-चरितों में ऐसा कोई आत्मचरित्र नहीं है जिसको इसकी तुलना में रखा जा सके। इसमें सब मिलाकर ६७३ चौपाई तथा दोहे हैं। रचना सुन्दर एवं सरल है। इससे ५५ वर्षों के तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का सुगमता से पता लगाया जा

सकता है। संवत् १६६२ में जब बादशाह अकबर का स्वर्गवास हुआ तो राज्य में चारों ओर अव्यवस्था एवं अशान्ति आ गयी। लोगों को चारों ओर विपत्ति ही विपत्ति दिखाई देने लगी। कवि ने इसका बडा सुन्दर चित्र खैंचा है। उसे पढिये—

घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट।
हुंडवाई गाडी कहुँ और, नक्द माल निरभरमी ठौर।
भले वस्त्र अरु भूषण भले, ते सब गाडे धरती तले।
घर घर सबनि विसाहें शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढो कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेश।
ऊँच नीच कोउ नहिं पहिचान, धनी दरिद्री भये समान॥
चोरि धाड़ दीसै कहुँ नाहि, योंही अपभय लोग डराहिं।

कवि की इन रचनाओं से तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं सामाजिक स्थिति आदि का अच्छी तरह पता चलता है। ये वर्णन इतिहास निर्माण के लिए बडे उपयोगी हैं।

बनारसीविलास—

बनारसीदासजी ने पूर्व वर्णित रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कितनी ही स्फुट रचनाये भी लिखी थीं। इनकी कुल संख्या कितनी हैं इसके सम्बन्ध में तो जैन शास्त्र भण्डारों की पूरी खोज होने के पश्चात् ही निश्चित लिखा जा सकता है, लेकिन फिर भी वर्तमान मे इन स्फुट रचनाओं की संख्या ६२ है। बनारसीविलास के

प्रारम्भ में जो कवितामय विषय सूचनिका दी हुई है उसमें कवि की ५७ रचनाओं के नाम दिये हुये हैं। इनके सिवाय तीन नवीन पदों की खोज श्रद्धेय नाथूराम जी प्रेमी ने की हैं। तथा अभी कवि के ७ नवीन पद जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार की सूची बनाते हुये एक गुटके में हमें मिले हैं। संभव है कि कवि द्वारा रचित और भी रचनायें खोज करने पर प्राप्त हो सके।

बनारसीविलास 'नाटक समयसार' अर्द्ध कथानक और नाम-माला के अतिरिक्त कवि की अब तक सभी उपलब्ध रचनाओं का संग्रह है। यह स्वयं कविका संग्रह किया हुआ नहीं है किन्तु कवि की मृत्यु के पश्चात् पं० जगजीवन राम ने इसका संग्रह किया है। पंडितजी आगरे के रहने वाले ही थे। इनको बनारसीदासजी की रचनाओं से अत्यधिक अनुराग था, इसलिये उन्होंने उस समय तक उपलब्ध सभी रचनाओं का एक स्थान पर संग्रह कर लिया और इस संग्रह का नाम बनारसीविलास रखा।। इन्होंने इस कार्य को संवत् १७७१ में समाप्त किया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है बनारसीविलास एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें किसी एक विषय का संग्रह न होकर कवि की विविध विषयों पर रचित कविताओं का संग्रह है। समूचे विलास को हम मुख्यतया निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१. जैन सिद्धान्त से सम्बन्धित कवितायें

२. अनूदित रचनायें

३. आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी कवितायें

४. सुभाषित, पद एवं स्फुट कवितायें

१. जैनधर्म सिद्धान्त से सम्बन्धित कवितायें:—

बनारसीदासजी जैन शास्त्रों के पारदर्शी विद्वान् थे। उनका गंभीर अध्ययन था। बनारसीविलास में संग्रहीत जैन सिद्धान्त विषय से सम्बन्धित रचनाओं में जैनधर्म के गहन तत्त्वों का जो परिचय दिया गया है वह उनके जैन सिद्धान्त विषयक गंभीर ज्ञान का स्पष्ट प्रमाण है। सिद्धान्त की गहन चर्चाओं को उदाहरण देकर समझाना उन्हें अच्छी तरह आता था। सिद्धान्त के इस भाग में विलास की मुख्यतया रचनायें आती हैं:-ज्ञान बावनी, मार्गणा-विधान, कर्मप्रकृतिविधान, साधु वन्दना, कर्मछत्तीसी, ध्यान बत्तीसी, पंच पद विधान, अष्ट प्रकार जिनपूजा, दश दान दश बोल, परमार्थ वचनिका, निमित्त उपादान की चिट्ठी आदि।

अनूदित रचनायें:—

इस संग्रह में कवि की तीन अनूदित रचनाएँ भी हैं। सूक्ति-मुक्तावलि, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और जिनसहस्रनाम। सूक्ति-मुक्तावलि आचार्य सोमप्रभ की संस्कृत रचना है। कवि और उनके साथी कवि कुमारपाल (कौरपाल) ने उसका सुन्दर अनुवाद किया है। कवि अपने इसे संवत् १६६१ बैशाख सुदी ११ को समाप्त किया था। यह समय कवि की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'नाटक समयसार' की रचना समाप्ति से करीब २ वर्ष पूर्व का आता है।

सूक्ति मुक्तावलि के सभी पद्य सुन्दर एवं हृदयग्राही हैं। एक पद्य का नमूना देखिये:—

> ज्यों मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतंगज ईंधन ढोवै।
> कंचन भाजन धूल भरे शठ मूढ सुधारस सो पग धोवै॥
> वाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै।
> त्यों यह दुर्लभ देह बनारसि, पाय अजान अकारथ खोवै॥

कल्याण मन्दिर स्तोत्र श्री कुमुदचन्द्राचार्य की संस्कृत रचना का हिन्दी पद्यानुवाद है। इसे परम जोत भी कहते हैं। बहुत से भाई प्रतिदिन इसका पाठ करते हैं। इसके प्रथम पद्य का पहिला पद परमजोत है, इसीलिये इसे परमजोत कहते हैं। विस्तार भय से हम उसका उदाहरण उपस्थित नहीं कर सकते। श्री जिनसेनाचार्य के संस्कृत जिनसहस्रनाम स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद कवि की तीसरी रचना है। इन तीनों ही रचनाओं के अनुवाद मे कवि काफी सफल रहे हैं।

आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी कवितायें:—

बनारसीविलास की अधिकांश रचनायें किसी न किसी रूप में आध्यात्म विषय से ओतप्रोत है। ऐसा लगता है मानो आत्मा और परमात्मा के गुणगान मे कवि ऐसे सने हुये थे कि उनका प्रत्येक शब्द अध्यात्म की छाप लेकर निकलता था। स्वयं कवि आत्मा के गुणगान में तल्लीन होकर उसके गुणगान किया करते थे और "मेरे अन्तर देखिये घट घट अन्तर राम" की पुकार से

जगत को सावधान किया करते थे। आत्मा का गुणगान करते हुये उन्होंने अध्यात्मबत्तीसी में जो निम्न पद्य लिखा है वह देखिये कितना सुन्दर है।

ज्यों सुवास फल फूल मे दही दूध मे घीव।
पावक काठ पाषाण मे त्यों शरीर में जीव॥
चेतन पुद्गल यों मिले, ज्यों तिल में खलि तेल।
प्रकट एक से देखिये, यह अनादि को खेल।
यह वाके रस में रमे वह वासों लपटाय।
चुम्बक करषै लोह को, लोह लगै तिह धाय।
कर्मचक्र की नींद सों मृषा स्वप्न की दौर
ज्ञान चक्र की ढरनि में सजग भांति सब ठौर॥

अध्यात्म की उत्कर्ष सीमा का नाम रहस्यवाद है। इसलिये कवि की कुछ कवितायें जिनमें अध्यात्म अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है, रहस्यवाद की कोटि में चली जाती हैं। हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवियों में महाकवि कबीर का नाम उल्लेखनीय है। लेकिन यदि पाठकगण बनारसीविलास की कुछ रहस्यवादी कविताएं पढेंगे तो ज्ञात होगा कि कविवर बनारसीदास भी कबीर की कोटि के ही कवि थे। डा० रामकुमार के शब्दों में रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त एवं निश्चल सम्बन्ध जोडना चाहती है और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।

कवि के अध्यात्म गीत में आत्मा नायक है और सुमति उसकी पत्नी है। सुमति आत्मा के विरह में जल में मछली की तरह तडफने लगती है। वह आत्मा का दर्शन पाने पर समुद्र में बूंद की तरह समा जाना चाहती है।

कवि की निम्न पंक्तियां पढिये:—

मैं विरहिन पिय के आधीन, यो तलफों ज्यों जल बिन मीन।
मेरा मनका प्यारा जो मिले।
बाहिर देखूं तो पिय दूर, घट देखे घट में भरपूर,
घट महि गुप्त रहै निरधार, वचन अगोचर मन के पार।
अलख अमूरति वर्णन कोय, कबधों पिय के दर्शन होय।

विरह में व्याकुल सुमति को धीरे धीरे यह अनुभव होने लगता है कि आत्मा उससे भिन्न नहीं है वह तो उसी के घटमें बसती है। तब वह कहती है:—

पिय मोरे घट, मैं पिय माँहि, जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहीं।
पिय मो करता मै करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति।
पिय सुख सागर, मैं सुख सींव, पिय शिव मन्दिर, मैं शिवनीव॥

एक दूसरे पद में सुमति के हृदय में आत्मा के प्रति प्रेम की धारा अबाध रूप से बहने लगती है। आत्मा की ओर देखते ही उसके परायेपन की गगरी फूट जाती है और दुविधा का अंचल हट जाता है। इसका एक उदाहरण देखिये:—

बालम तुहू तन, चितवन-गागरि फूटि ।

अचरा गौ फहराय, सरम गै छूटि ॥

पिउ सुधि आवत वन में पेसिउ पेलि ।

छाडउ राज डगरिया भयऊ अकेलि ॥२॥

काय नगरिया भीतर चेतन, भूप ।

करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप ॥३॥

चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर ।

चार चोर घर मूसहिं, सरवस तोर ॥४॥

चेतन भयऊ अचेतन संगरा पाय ।

चक्मक में आगी देखी नहिं जाय ॥५॥

चेतन तुहि लपटाय प्रेम रस फांद ।

जस राखत घन तोपि विमल निशि चाद ॥६॥

चेतन यह भव सागर धरम जिहाज ।

तिहि चढ बैठे छाडि लोक की लाज ॥७॥

एक दूसरी विशेषता रहस्यवाद में बतलाई गई है वह यह है उसमे आध्यात्मिक तत्त्व हो। संसार की नीरस वस्तुओं से बहुत दूर एक ऐसे वातावरण में रहस्यवाद रूप ग्रहण करता है जिसमें सदैव नयी नयी उमंगों की सृष्टि होती है। रहस्यवादी के मानस मे प्रत्येक समय एक ऐसी स्फूर्ति रहती है जिससे वह अनन्त शक्ति की अनुभूति में मग्न रहता है और सांसारिकता से बहुत दूर किसी ऐसे स्थान मे निवास करता है जहां न तो मृत्यु का भय है, न रोगों का अस्तित्व है और न शोक का ही प्रसार है"।

अध्यात्मफाग में जीव को यह अनुभव होने लगता है कि बिना आत्मज्ञान के ईश्वर का रूप किस तरह प्राप्त हो सकता है। जिसकी महिमा अगम्य एवं अनूठी है तथा जो अगोचर होने पर भी हृदय में ही समाया हुआ है। अध्यात्म ज्ञान होने पर शुभ भाव दल रूपी पल्लव लहराने लगते हैं और सहज आनन्द रूपी बसन्त का आगमन होने लगता है। सुमति कोकिल बोलने लगती हैं और मन रूपी भौंरा मदोन्मत्त हो उठता है। कवि के शब्दों में देखिये:—

अध्यात्म बिन क्यों पाइए हो, परम पुरुष को रूप।
अघट अंग घट मिलि रह्यो हो, महिम अगम अरूप॥
माया रजनी लघु भई हो, समरस दिन शशि जीत।
मोह पक की थिती घटी हो, सशय शिशिर व्यतीत॥
शुभ दल पल्लव लहलहे हो, आयो सहज बसन्त॥
सुमति कोक्लि। गहगही हो, मन मधुकर मयमत॥

पहेली नामक कविता में कवि ने आत्मा की सुमति एवं कुमति नामकी दो वनिताओं का स्वरूप एवं उनका वार्तालाप के रूप में जो आत्मा एवं अच्छे बुरे कर्मोका वर्णन किया है वह उस अवस्था का वर्णन है जहाँ वह सदा जागृत रहती है और कभी सुप्त अवस्था में नहीं रहती। सुमति अपने सहेलियों के संग क्रीडा करती हुई जो पहेली उनके सामने उपस्थित करती है और सखियां जिस प्रकार उसका समाधान करती है उसको कवि के ही शब्दों में पढ़िये:—

करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली।
काहू समय पाय सखियन सौं, कहे पुनीत पहेली॥

मोरे आगन विरवा उलह्यो, विना पवन भकुलाई ।
ऊंचि डाल बड पात सघनवा, छांह सौत के जाई ॥
बोली सखि बात मैं समुझी, कहू अर्थ अब जो है ।
तेरे घर अन्तर घट नायक, अद्‌भुत विरवा सोहै ॥
ऊंची डाल चेतना उद्धत, बडे पात गुण भारी ।
ममता वात गात नहिं परसे, छकनि छांह छतनारी ॥

इस प्रकार बनारसी-विलास की अध्यात्मगीत, अध्यात्मफाग, वरवा, शिवपच्चीसी, पहेली, शान्तिजिनस्तुति आदि कविताएँ रहस्य-वादी रचनायें कही जा सकती हैं ।

सुभाषित, पद एवं स्फुट कवितायें:—

सूक्तियों का ही नाम सुभाषित है । हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने अपनें २ काव्यों में सुभाषितों का प्रयोग किया है । ये सुभाषित मानव को सत्प्रेरणा देते हैं । बनारसीदासजी ने भी प्राचीन कवियों के मार्ग को अपनाया एवं अपनी कविताओं को सूक्तियों से अलंकृत किया । ज्ञान बावनी, मोक्षपैडी, ज्ञान पच्चीसी प्रश्नोत्तरदोहा, प्रश्नोत्तररत्नमाला आदि कविताओं में सुभाषितों की भरमार है । इन सुभाषितों के द्वारा कवि ने संसारी मनुष्य को तरह २ के उपदेश दिये हैं । ज्ञान पच्चीसी में प्रयुक्त कुछ सुभाषित देखिये:—

ज्यों औषध अंजन किये तिमिर रोग मिट जाय ।
त्यो सतगुरु उपदेश तें, सशय वेग विलाय ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढे, बूडइ अंध अदेख ।
त्यों तुम भवजल में परे, बिन विवेक धर लेख ॥

× × × × × × ×

मन जहाज घट में प्रगट, भव समुद्र घट मांहि ।
मूरख मरम न जानही, बाहिर खोजन जाय ॥

सुभाषितों के अतिरिक्त बनारसीदासजी के कुछ पद भी मिलते हैं जो गागर में सागर की कहावत को चरितार्थ करने वाले हैं । सभी पद अध्यात्म रस से सने हुये हैं । तथा संसार की वास्तविक दशा को बतलाने वाले हैं । कवि एक पद में जगत् के प्राणियों को सम्बोधित करता हुआ कहता है ।

चेतन तू तिंहुकाल अकेला ।
नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यो कुटुंब का मेला ॥चेतन॥

एक दूसरे पद में वे जीव को उलहाना देते हुये कहते हैं:—

चेतन तोहि न नेक संभार ।
नख सिख लों दिढ बंधन बेढे, कौन करे निरवार ॥चेतन॥
जैसैं आग पषान काठ मे लखिय न परत लगार ।
मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार ॥चेतन॥

एक पद मे जब वे कहते हैं:—

हम बैठे अपने मौन सौं ।
दिन दश के महिमान जगत जन बोलि बिगारैं कौन सौं ॥ हम बैठे ॥

इसे पढ कर आत्मा में एक नवीन लहर दौडती है और संसार की विचित्र दशा पर अवश्य विचार उत्पन्न होता है।

इस प्रकार कवि के सभी पद जिनकी संख्या २७ है, भावपूर्ण एवं सुन्दर हैं।

सुभाषित एवं पदों के अतिरिक्त कवि द्वारा लिखी हुई कुछ स्फुट रचनाये भी हैं जिनका उल्लेख करना भी यहां आवश्यक है। इन रचनाओं में हमें कवि की बहुमुखी प्रतिभा का पता लगता है। सोलह तिथि, षट्दर्शनाष्टक, चातुर्वर्ण्य, प्रस्ताविक फुटकर कविता, गोरखनाथ के वचन, वैद्य आदि के भेद आदि रचनाओं को स्फुट कविताओं में स्थान दिया जा सकता है।

कवि के समय में भारत में मुसलमानों का राज्य था। हिन्दू और मुसलमान आपस में धर्म के नाम पर लडते थे। उससे कवि को घृणा थी। कवि की भावना के अनुसार दोनों धर्म भिन्न २ होते हुये भी दोनों का परमात्मा एक ही है "मेरे नैनन देखिये घट घट अन्तर राम"। इसका उदाहरण कवि के शब्दों में पढिये:-

एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोय।
मन की द्विविधा मान कर भये एक सौं दोय॥
दोऊं भूले भरम में करें वचन की टेक।
राम राम हिन्दू कहें, तुर्क सलामालेक॥
इसके पुस्तग वांचिये, वे हू पढे कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे शोभा, जेब॥

तिनको द्विविधा जो लखें रंग विरंगी चाम,
मेरे नैंनन देखिये, घर घर अन्तर राम ॥

गोरखनाथ के सम्प्रदाय का कवि के समय में काफी प्रचार था इसीलिये गोरखनाथ के वास्तविक उपदेशों को कवि ने अपनी कविता में उपस्थित किया। सुन्दर एवं सरल शब्दों में कवि ने किस प्रकार गोरखनाथ के वचनों को उपस्थित किया है वह पठनीय है। इसकी एक चौपाई देखिये।

माया जोर कहै मैं ठाकर, माया गये कहावै चाकर।
माया त्याग होय जो दानी कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥

हिन्दी गद्य लेखक के रूप में:—

बनारसीदासजी की प्रायः सभी रचनाएं पद्यों अथवा छंदों में ही है किन्तु गद्य में भी उनकी दो रचनाएं बनारसी विलास में है। इन दोनों के नाम "परमार्थवचनिका" और "उपादान निमित्त की चिट्ठी" हैं। ये दोनों निबन्ध १७ वीं शताब्दी के हिन्दी गद्य के नमूने हैं। ये निबन्ध ब्रजभाषा में लिखे हुये हैं लेकिन अवधि भाषा का भी उन पर पर्याप्त प्रभाव दिखलायी देता है। इसके अतिरिक्त कहीं २ ढूंढारी भाषा का भी प्रभाव इनमें दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी भाषा के अतिरिक्त कवि पञ्जाबी भाषा के भी अच्छे जानकार थे। उन्होंने जो मोक्षपैडी नामक कविता लिखी है वह पञ्जाबी भाषा की सुन्दर रचना है।

जयपुर — कस्तूरचन्द कासलीवाल

ता० १५-५-५४ ई०

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
२	७	सचनिका	सवचनिका
२	१०	विरघौ	विरधौ
६	४	अद्भत	अद्भुत
८	१७	इह	द्रह
११	३	मेघातीत	मेधातीत
११	८	ावश्रामो	विश्रामी
१३	५	वज्रव्यपी	वज्रव्यापी
१५	११	कोपदवानव	कोपदवानल
१७	११	श्रेयस्नरो:	श्रेयस्तरो
२०	६	काचखडमन	काचखंडमन
२१	८	गुणिसग	गुणिसंग
३३	१६	कुरग	कुरंग
३४	५	विसरै	विस्तरै
३४	१७	घन	धन
३६	१२	कुल्ब	कुल
४०	६	जतु	जंतु
४४	१०	सताप	संताप
४६	६	ऐसो	ऐसी

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
४७	८	कल	झल
४६	१०	सूजी	सूजि
५५	१३	गिशाचर	निशाचर
५६	१	ताको	ताकी
५६	१३	संतम सुपुंज	संतमस पुंज
६१	२	ध्रव	ध्रुव
६५	१५	राजाको	राजको
७२	६	बनारसी	वानारसी
७२	१६	तिन में	तामें
७६	२०	विपरात	विपरीत
७८	५	कषायक	कषायके
८०	८	मनमथको	मनमंथको
८१	४	बढ	बढै
८३	३	नाभि	मृगनाभि
८८	१८	मढभावको	मूढभावको
८६	२३	ह	है
६२	१३	व्यालीस आठ	चालीस आठ
६२	१७	घर	धर
६२	१६	सम	सभ
६२	२२	ध्रव	ध्रुव
६४	१०	मनहार	मरनहार

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
९४	१५	त्यों त्यों त्यों	त्यों त्यों
९५	२	बहुरानी	बहुरागो
९७	५	श्रति	श्रुति
९८	६	गये	भये
१०१	२०	कंथु	कुंथु
१०२	१७	जिनंद सुमति	जिनंद अभिनंद सुमति
१०४	२१	कुश्रति	कुश्रुति
१०५	१६	शुशुभ अभ	शुभ अशुभ
१०५	१८	सीधे	साधे
१०८	३	विलल	विमल
११५	७	जब	जव
११८	६	भोग जुरै	भोग न जुरै
११८	६	उरभोग	उपभोग
१२०	६	घेय	धेय
१२१	१०	उपग	उपंग
१२२	१२	कम	कर्म
१३०	८	हार	निहार
१३०	१५	भत	भीत
१३१	२२	शिवपथसधक	शिवपथसाधक
१३२	१६	लोपना	लोपना
१३३	१६	तिहुंवादी	तिहुंदादी

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१३४	७	करंकसा	रंकसा
१३४	१८	हरुवै तन	हरुवैतन
१३४	२१	परै रे	परैरे
१३५	१	पापी	पानी
१३५	४	दुहुं वादी	दुहुंवादी
१३५	१६	तु साडा	तुसाडा
१४२	६	चोरा	चोरी
१४२	१६	धर्म ध्या	धर्मध्यान
१४३	६	विपरीत	विपरति
१४४	१२	थातैं	यातैं
१४४	१६	उयों	ज्यों
१४७	१०	परिगृह	परिग्रह
१४६	६	शुल्कध्यान	शुक्लध्यान
१५०	१६	चढ ड लै	चढ डोलै
१५२	१८	पावनके	पवनके
१५३	८	वद्वान	वादवान
१५४	२	मयमत	मयमंत
१५५	७	विराम	विराग
१५८	८	भग	भंग
१५८	१८	आप न	आपन
१५६	२	दुरमात	दुरमति

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१५६	८	रच	रंच
१६२	२०	उभाभय	उवझाय
१६४	१७	पडिता	पंडिता
१७०	१६	अखडित	अखंडित
१७५	१६	पुरुषमडन	पुरुषमंडन
१७६	४	ह्लै	ह्लै
१७६	१२	पुहुष	पुहुप
१७६	१८	पुप्पशार	पुष्पशार
१७७	३	जिनपजत	जिनपूजत
१७७	२०	इसके	इनके
१७६	१६ वीं पंक्ति 'जिनधर्म' शीर्षक के आगे नीचे लिखा दोहा और पढ़ें ❀		
१७६	१७ वीं पंक्ति (दोहा नं० ६) का शीर्षक 'आगम' पढ़ें		
१८१	७	चचल	चंचल
१८१	११	कुलान	कुलीन
१८२	६	खोखन	खोजन
१८२	६	चिद्रप	चिद्रूप
१८२	१०	जाग	जोग
१८३	१	दन	दम

❀ जो पर तजि आपाभजै, जहाँ सुदृष्टि जुत कर्म
अशरण रूप अजोग पथ सो कहिए जिनधर्म (१५) (क.)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१८३	१६	श्रद्वा	श्रद्धा
१८३	२०	यम	दम
१-३	२१	वारज	वीरज
१८४	१	रतु	रितु
१८४	३	ध्रव	ध्रुव
१८४	१६	साय	सोय
१८५	१०	खोय	सोय
१९१	४	कोर्त्ति	कीर्त्ति
१९८	४	परदाष	परदोष
१९९	१	परेवा वरे	परे बावरे
१९९	७	ावषाद	विषाद
२०३	६	बाचा	बावा
२२३	१५	पटपेवन	पटपेखन

श्रीमहावीरस्वामिने नमः

बनारसीविलास.

विषय सूचनिका.

सवैया इकतीसा

प्रथम सहस्रनाम[1] सिन्दूरप्रकरधाम[2], बावनीसवैया[3] वेद-
निर्णय[4] पचासिका। त्रेसठशलाका[5] मार्गना[6] करमकी[7] प्रकृति-
कल्याणमन्दिर[8] साधुवन्दन[9] सुवासिका॥ पैंड़ी[10] कर्म की छतीसी[11]
पीछे ध्यानकी बतीसी[12], अध्यातम बतीसी[13] पचीसी ज्ञान[14]
×रासिका। शिवकी पचीसी[15] भवसिन्धुकी चतुरदशी[16], अध्यात-
मफाग[17] तिथिषोड़स[18] निवासिका+ ॥ १ ॥

तेरहकाठिया[19] मेरे मनका सुप्यारागीत[20], पंचपद विधान[21]
सुमति देवीशत[22] है। शारदा बड़ाई[23] नवदुरगा[24] निर्णय नाम[25],

× शासिका पाठान्तर है। + विलासिका पाठान्तर है।

[२६] नौरतन [२७] कवित्त सु [२८] पूजा दानदत्त है ॥ [२९] दशबोल [३०] पहेली [३१] सुप्रश्न [३२] प्रश्नोत्तरमाला, [३३] अवस्था [३४] मतान्तर [३५] दोहरा बरणत है। [३६] अजितके छन्द [३७] शान्तिनाथछन्द [३८] सेनानव, [३९] नाटककवित्त चार, बानी [४०] मिथ्यामत है ॥ २ ॥

[४१] फुटकरसवैया बनाये बच [४२] गोरखके, [४३] वेद आदिभेद [४४] परमारथ वचनिका। [४५] उपादान निमित्तकी चीठी [४६] तिनहीके दोहे, [४७] भैरों [४८] रामकली औ [४९] बिलावल सचनिका ॥ [५०] आशावरी [५१] बरवै सु [५२] धनाश्री [५३] सारंग [५४] गौरी, [५५] काफी औ [५६] हिंडोलना [५७] मलारकी सचनिका। भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदैमें, विरचौ बनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

ये बरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त।
इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥
महिमा जिनके वचनकी, कहै कहां लग कोय।
ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यों त्यों अधिकी होय ॥४॥

॥ इति विषयसूचनिका ॥

अथ जिनसहस्रनाम ।

दोहा

परमदेव परनामकर, गुरुको करहुं प्रणाम ।
बुधिबल वरणों ब्रह्मके, सहसअठोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहों, कहों सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविध शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपई १५ मात्रा

प्रथमोंकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ।
त्रिभुवननाथ ईश गुणविन्द । गिरातीत[1] गुणमूल अनिन्द ॥ १ ॥
गुणी गुप्त गुणवाहक वली । जगतदिवाकर कौतूहली ।
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अलख अमूरति अरस अखेद । अचल अवाधित अमर अवेद ।
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनँदकन्द ॥ ३ ॥
प्राननाथ पावन अमलान । शीलसदन निर्मल परमान ।
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाण । अविनाशी अस्पर्श अमान ।
अमल अनादि अदीन अछोभ । अनातङ्क अज अगम अलोभ ॥ ५ ॥

---

1 वाणी का अविषय

अनवस्थित अध्यातमरूप। आगमरूपी अघट अनूप।
अपट अरूपी अभय अमार। अनुभवमंडन अनघ अपार ॥ ६ ॥
विपुलपूतशासन दातार। दृशातीत उद्धरन उदार।
नभवत पुंडरीकवत[1] हंस। करुणामन्दिर एनविध्वंस[2] ॥ ७ ॥
निराकार निहचै निरमान। नानारसी लोकपरमान।
सुखधर्मा सुखज्ञ सुखपाल। सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा

अम्बरवत आकाशवत, क्रियारूप करतार।
केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥ १ ॥

चौपई

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य। रमाविराम रमापति रम्य।
अप्रमाण अघहरण पुराण। अनमित लोकालोक प्रमाण ॥ १३ ॥
कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय। अनभव अनारूढ असहाय।
सुगम अनन्तराम गुणग्राम। करुणापालक करुणाधाम ॥ १ १४ ॥
लोकविकाशी लक्षणवन्त। परमदेव परब्रह्म अनन्त।
दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल। दुरारोह दुर्गम द्रिगपाल ॥ १५ ॥
सत्यारथ सुखदायक सूर। शीलशिरोमणि करुणापूर।
ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान। नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

---

१. कमल के समान २. पाप नाशक

अकथ अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत ॥
मंगलकारी मंगलमूल । विद्यासागर विगतदुकूल[1] ॥ १७ ॥
नित्यानन्द बिमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मनिधान ।
ध्यानी धामवान धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ।
तपसागर तपपुञ्ज अछेद । भवभयभंजन अमृत अभेद ॥ १९ ॥
गुणावास गुणमय गुणदाम । स्वपरप्रकाशक रमताराम ।
नवल पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥२०॥

दोहा

लघुरूपी लालचहरन, लोभबिदारन वीर ।
धारावाही धौंतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयशतक ॥ २ ॥

पद्धरिछन्द ।

चिन्तामणि चिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ।
चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूडामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥२२॥
चारित्रधाम चित् चमत्कार । चरनातम रूपी चिदाकार ।
निर्मोचक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥२३॥
निरभोग निरास्रव निराहार । नगनरकनिवारी[2] निर्विकार ।
आतमा अनत्तर अमरजाद । अत्तर अवंध अत्तय अनाद ॥ २४

१. वस्त्र रहित २. पहाड

आगत अनुकम्पामय अडोल । अशरीरी अनुभूती अलोल ।
विश्वम्भर विस्मय विश्वटेक । व्रजभूषण व्रज नायक विवेक ॥ २५ ॥
छलभंजन छायक छीनमोह । मेधापति अकलेवर अकोह ।
अद्रोह अविग्रह अग अरंक । अद्भुतनिधि करुणापति अबंक ॥२६॥
सुखराशि दयानिधि शीलपुंज । करुणासमुद्र करुणाप्रपुंज ।
वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ । निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ ॥२७॥
जिननायक जिनकुंजर जिनेश । गुणपुंज गुणाकर मंगलेश ।
क्षेमंकर अपद अनन्तपानि । सुखपुंजशील कुलशील खानि ॥२८॥
करुणारसभोगी भवकुठार । कषिवत[1] कृशानु दारन तुसार ।
कैतवरिपु अकल कलानिधान । धिषणाधिप ध्याता ध्यानवान ॥२९॥

दोहा

छपाकरोपम[2] छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ ।
अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्मा कृतयज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पद्धरिछन्द ।

लोकांत लोकप्रभु लुप्तमुद्र । संवर सुखधारी सुखसमुद्र ।
शिवरसी गूढरूपी गरिष्ठ । वलरूप बोधदायक वरिष्ठ ॥ ३१ ॥
विद्यापति धीधव विगतवाम । धीवंत विनायक वीतकाम ।
धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल । लीलाविलास जिन शारदूल ॥ ३२ ॥
परमारथ परमातम पुनीत । त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ।
तपराशि तेजकुल तपनिधान । उपयोगी उग्र उदोतवान ॥ ३३ ॥

---

१ कषाय रूपी अग्नि को नष्ट करने के लिए बर्फ के समान २. चन्द्रमा

उत्पातहरण उद्दामधाम । अजनाथ विमच्चर विगतनाम ॥
बहुरूपी बहुनामी अजोप । विषहरण विहारी विगतदोप ॥ ३४ ॥
छितिनाथ छमाधर छमापाल । दुर्गम्य दयार्णव दयामाल ॥
चतुरेश चिदातम चिदानंद । सुखरूप शीलनिधि शीलकन्द ॥ ३५ ॥
रसव्यापक राजा नीतिवंत । ऋषिरूप महर्षि महमहंत ॥
परमेश्वर परमऋषि प्रधान । परत्यागी प्रगट प्रतापवान ॥ ३६ ॥
परतत्त्वपरमसुख परमसुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
सर्वज्ञ सुदर्शन सदातृप्त । शंकर सुवासवासी अलिप्त ॥ ३७ ॥
शिवसम्पुटवासी सुखनिधान । शिवपंथ शुभंकर शिखावान ॥
असमान अंशधारी अशेप । निर्द्वन्दी निर्जड़ निरवशेष ॥ ३८ ॥

दोहा

विस्मयधारी बोधमय, विश्वनाथ विश्वेश ।
बंधविमोचन बज्रवत, बुधिनायक विबुधेश ॥ ३९ ॥

इति लोकांत नाम चतुर्थ शतक ॥४॥

छन्दरोडक ।

महामंत्र मंगलनिधान मलहरन महाजप ।
मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ मतिमथन महातप ॥
निस्तरङ्ग निःसङ्ग नियमनायक नंदीसुर ।
महादानि महज्ञानि महाविस्तार महागुर ॥ ४० ॥
परिपूरण परजायरूप कमलस्थ कमलवत ।
गुणनिकेत कमलासमूह धरनीश ध्यानरत ॥

भूतिवान भूतेश भारक्षम भर्म उच्छेदक।
सिहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥
शिवकारण शिवकरन भविक बंधव भवनाशन।
नीरिरंश निःसमर सिद्धिशासन शिवआसन ॥
महाकाज महाराज मारजित मारविहंडन।
गुणमय द्रव्यस्वरूप दशाधर दारिदखंडन ॥ ४२ ॥
जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर।
जगतबंधु जिनराज शीलसंचयसुखसागर ॥
महाशूर सुखसदन तरनतारन तमनाशन।
अगनितनाम अनंतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥
वारिजवत्त जलजवत्त पद्म उप्पम पंकजवत्त।
महाराम महधाम महायशवंत महासत ॥
निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि।
प्रशमरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द।

सुरसभोगी २ शील समुदायकी चाल—
शुभकारनशील इह सील राशि संकट निवारन
त्रिगुणातम लपतिहर परमहंसपर पंचवारन ॥
परम पदारथ परमपथ, दुखभंजन दुरलक्ष।
तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामंत्र नाम पंचम शतक ॥ ५ ॥

रोडक छन्द ।

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिकन्दन ।
परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवंदन ॥
जिन जिनपति जिनसिंह, जगतमणि बुधकुलनायक ।
कल्पातीत कुलालरूप, दृग्मय दृगदायक ॥ ४६ ॥
कोपनिवारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुंजय ।
करुणासदन समाधिरूप, शिवकर शत्रुंजय ॥
परावर्त्तरूपी प्रसन्न, आतमप्रमोदमय ।
निजाधीन निर्द्वन्द, ब्रह्मवेदक व्यतीतभय ॥ ४७ ॥
अपुनर्भव जिनदेव सर्वतोभद्र कलिलहर ।
धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥
त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलातपपादप ।
सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन अविषादप ॥ ४८ ॥
लोकअग्रवासी त्रिकालसाखी करुणाकर ।
गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥
धीरज धौरी धौतकर्म धर्म्मंग धामेश्वर ।
रत्नाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥
निरलिङ्गी शिवलिङ्गधार बहुतुंड अनानन ।
गुणकदम्ब[1] गुणरसिक रूपगुणअंघ्रिपकानन ॥
निरअंकुश निरधाररूप निजपर परकाशक ।
विगतास्रव निरबंध बंधहर बंधविनाशक ॥ ५० ॥

१ गुण रूपी वृक्षों के वन ।

वृहत अनङ्ग निरंश अंशगुणसिन्धु गुणालय।
लक्ष्मीपति लीलानिधान वितपति विगतालय॥
चन्द्रवदन गुणसदन चित्रधर्मा सुखथानक।
ब्रह्माचारी[1] वज्रवीर्य वहुविधि निरवानक॥ ५१॥

दोहा

सुखकदम्ब साधक सरन, सुजन इष्टसुखवास।
बोधरूप वहुलातमक, शीतल शीलविलास॥ ५२॥

इति श्रीपरमप्रबोधनामक षष्ठ शतक॥६॥

रूप चौपई।

केवलज्ञानी केवलदरसी। सन्यासी संयमी समरसी।
लोकातीत अलोकाचारी[2]। त्रिकालज्ञ धनपति धनधारी॥५४॥
चिन्ताहरण रसायन रूपी। मिथ्यादलन महारसकूपी।
निर्वृतिकर्ता मृषापहारी। ध्यानधुरंधर धीरजधारी ॥५५॥
ध्याननाथ ध्यायक वलवेदी। घटातीत घटहर घटभेदी।
उदयरूप उद्धत उतसाही। कलुषहरणहर किल्विषदाही॥५६॥
वीतराग बुद्धीश विषारी। चन्द्रोपम वितन्द्र व्यवहारी।
अगतिरूप[3] गतिरूप विधाता। शिवविलास शुचिमय सुखदाता॥५७॥
परमपवित्र असंख्यप्रदेशी। करुणासिंधु अचिन्त्य अभेषी।
जगतसूर निर्म्मल उपयोगी। भद्ररूप भगवन्त अभोगी ॥५८॥

---

१ ब्रह्मवीज अथवा वज्रवीज भी पाठ है। २ रमापति भी पाठ है।
३ अगतिरूप भी पाठ है।

भानोपम भरता भवनासी । द्वन्द्वविदारण बोधविलासी ।
कौतुकनिधि कुशली कल्याणी । गुरू गुसाँई गुणमय ज्ञानी ॥५६॥
निरातंक निरवैर निरासी । मेघातीत मोक्षपदवासी ।
महाविचित्र महारसभोगी । भ्रमभंजन भगवान अरोगी ॥६०॥
कल्मषभंजन केवलदाता । धरोद्धरन[1] धरापति धाता ।
प्रज्ञाधिपति परम चारित्री । परमतत्त्ववित् परमविचित्री ॥६१॥
संगातीत संगपरिहारी । एक अनेक अनन्ताचारी ।
उद्यमरूपी ऊरधगामी । विश्वरूप विजयी विश्रामी ॥६२॥

दोहा

धर्मविनायक धर्मधुज, धर्मरूप धर्मज्ञ ।
रत्नगर्भ राधारमण, रसनातीत रसज्ञ ॥ ६३ ॥

इति केवलज्ञानी नामक सप्तम शतक ॥ ७ ॥

रूप चौपई ।

परमप्रदीप परमपददानी । परमप्रतीति परमविज्ञानी[2] ।
परमज्योति अघहरन अगेही । अजित अखंड अनंग अदेही ॥६४॥
अतुल अशोष अरेष अलेषी । अमन अवाच अदेख अभेषी ।
अकुल अगूढ़ अकाय अकर्मी । गुणधर गुणदायक गुनमर्म्मी ॥६५॥
निस्सहाय निर्म्मम नीरागी । सुधारूप सुपथग सौभागी ।
हतकैतवी मुक्तसंतापी । सहजस्वरूपी सबविधि व्यापी ॥६६॥

---

१ पाठ भेद—धाराधरन । २ पाठ भेद—परमरसज्ञानी ।

महाकौतुकी महद विज्ञानी । कपटविदारन करुणादानी ।
परदारन परमारथकारी । परमपौरुषी पापप्रहारी ॥ ६७ ॥
केवलब्रह्म धरम[१]धनधारी । हतविभाव हतदोष हतारी ।
भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
शंभु सर्वदर्शी शिवपंथी । निराबाध निःसंग निग्रन्थी ।
यती यंत्रदाहक हितकारी । महामोहवारन बलधारी ॥६९॥
चित्री चित्रगुप्त चिदवेदी । श्रीकारी संसारउछेदी ।
चितसन्तानी चेतनवंशी । परमाचारी भरमविध्वंसी ॥७० ॥
सदाचरण स्वशरण शिवगामी । वहुदेशी अनन्तपरिणामी ।
वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥७१॥
चारु चिदङ्कित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जीती ।
शुभकारण शुभकर शुभमंत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ॥७२॥

दोहा

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।
मुक्ति मुकुन्द महेश हर[२], महदानंद मुनीश ॥७३॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥८॥

मंगलकमला की ढाल ।

दुरित दलन सुखकन्द ए । हत भीत अतीत अमन्द ए ।
शीलशरणहत कोप ए । अनभंग अनंग अलोप ए ॥ ७४ ॥

१ परम-पाठ भेद है । २ इन (सूर्य) यह भी पाठ है ।

हंसगरभ हतमोह ए। गुणसंचय गुणसन्दोह ए।
सुखसमाज सुख गेह ए। हतसंकट विगत सनेह ए॥ ७५॥
छोभदलन हतशोक ए। अगणित बल अमलालोक ए।
धृतसुधर्म कृतहोम ए। सतसूर अपूरब सोम ए॥ ७६॥
हिमवत हतसंताप ए। वचअव्यापी विगतालाप ए।
पुण्यस्वरूपी पूत ए। सुखसिंधु स्वयं संभूत ए ॥ ७७॥
समयसार श्रुतिधार ए। अविकलप अजल्पाचार ए।
शांतिकरन धृतशांति ए। कलरूप मनोहरकान्ति ए॥ ७८॥
सिंहासन आरूढ़ ए। असमंजसहरन अमूढ ए।
लोकजयी हतलोभ ए। कृतकर्मविजय धृतशोभ ए॥ ७९॥
मृत्युंजय अनजोग ए। अनुकम्प अशंक असोग ए।
सुविधिरूप सुमतीश ए। श्रीमान् मनीषाधीश ए॥ ८०॥
विदित विगत अवगाह ए। कृतकारज रूप अथाह ए।
वर्द्धमान गुणभान ए। करुणाधरलीलविधान ए॥ ८१॥
अचर्यानिधान अगाध ए। हतकलिल निहतअपराध ए।
साधिरूप[1] साधक धनी ए। महिमागुणमेरु महामनी[2] ए ॥८२॥
उतपतिवैध्रुवधान ए। त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान ए।
जगजीत जगदाधार ए। करुणागृह विपतिविदार ए ॥ ८३॥
जगसाखी वरवीर ए। गुणगेह[3] महागंभीर ए।
अभिनंदन अभिराम ए। परमेष्ठी परमोद्दाम ए॥ ८४॥

१ उत्कृष्ट रूप धारी। २ पाठ भेद-महामुनी। ३ पाठ भेद परमेनं।

दोहा

सुगुण विभूतीवैभवी, सेमुषीश[1] संबुद्ध।
सकलविश्वकर्माप्रभव, विश्वविलोचन शुद्ध॥ ८५॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक॥ ६॥

मंगल कमलाकंद की ढाल

शिवनायक शिव एव ए। प्रवलेश प्रजापति देव ए।
मुदित महोदय मूल ए। अनुकम्पा सिंधु अकूल ए॥ ८६॥
नीरोपम गतपंक ए। नीरीहत निर्गतशंक ए।
नित्य निरामय भौन ए। नीरन्ध्र निराकुल गौन ए॥ ८७॥
परमधर्मरथसारथी ए। धृत केवल रूपकृतारथी ए।
परम वित्त[2] भंडार ए। संवरमय संयमधार ए॥ ८८॥
शुभी सरवगत संत ए। शुद्धोधन शुद्ध सिद्धंत ए।
नैयायक नय जान ए। अविगत अनंत अभिधान ए॥ ८९॥
कर्मनिर्जरामूल ए। अघभंजन सुखद अमूल ए।
अद्भूत रूप अशेष ए। अवगमनिधि अवगमभेष ए॥ ९०॥
वहुगुणरत्नकरंड ए। ब्रह्मांडरमणब्रह्मंड ए।
वरद वंधु भरतार ए। महदंग महानेतार ए॥ ९१॥
गतप्रमाद गतपास ए। निरनाथ निराथिय निरास ए।

१ बुद्धि के ईश्वर। २ पाठ भेद–नित्य।

महाजंत्र महास्वामि ए। महदर्थ महागतिगामि ए ॥ ९२ ॥
महानाथ महजान ए। महपावन महानिधान ए।
गुणागार गुणवास ए। गुणमेरु गंभीरविलास ए ॥ ९३ ॥
करुणामूल निरंग ए। महदासन महारसंग ए।
लोकबन्धु हरिकेश ए। महदीश्वर महदादेश ए ॥ ९४ ॥
महविभु महविधिवंत ए। धरणीधर धरणीकत ए।
कृपावंत कलिग्राम ए। कारणमय करन[1]विराम ए ॥ ९५ ॥
मायावेलगयन्द ए। सम्मोहतिमिरहरचन्द ए।
कुमति निकन्दन काज ए। दुखगजभंजनमृगराज ए ॥ ९६ ॥
परमतत्त्वसत संपदा ए। त्रिगुणी त्रिकालदर्शीसदा ए।
कोपदवानवनीर ए। मदनीरदहरणसमीर ए ॥ ९७ ॥
भवकांतारकुठार ए। संशयमृणालअसिधार ए।
लोभशिखरनिर्घात ए। विपदानिशिहरणप्रभात ए ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, श्रीपति शीलनिकाय।
महादेव मनमथमथन, सुखमय सुखसमुदाय ॥ ९९ ॥

इति श्रीशिवनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा

इति श्रीसहस्रअठोतरी, नाम मालिका मूल।
अधिक कसर पुनरुक्ति की, कविप्रमादकी भूल ॥ १०० ॥

---

१ करन—इन्द्रिय।

परमपिंड ब्रह्मांडमें, लोकशिखर निवसंत ।
निरखि नृत्य नानारसी, वानारसी नमंत ॥ १०१ ॥
महिमा ब्रह्मविलासकी, मोपर कही न जाय ।
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
संवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
करनक्षत्र तिथि पंचमी; प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥

इति भाषाजिनसहस्रनाम ।

ॐ

श्री सोमप्रभाचार्यविरचिता

सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली

(सिंदूरप्रकर)

शार्दूलविक्रीडित ।

सिन्दूरप्रकरस्तपः करिशिरः क्रोडे कषायाटवी-

दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।

मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव-

प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥१॥

छप्पय ।

शोभित तपगजराज, सीस सिन्दूर पूरछवि ।

बोधदिवस आरंभ, करण कारण उद्योत रवि ॥

मंगल तरु पल्लव, कषाय कांतार हुताशन ।

बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाकमलाशन ॥

इहविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण[1] संताप हर ।

जिनरायपार्श्व[2] नखज्योति भर, नमत बनारसि जोर कर ॥

---

१ पाठभेद-चरण । २ पाठभेद-जिनराय पाय ।

शार्दूलविक्रीडित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः
सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।
किं वाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथनं न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधकान्तवेसरीछन्द ।

जैसें कमल सरोवर वासै । परिमल तासु पवन परकासै ।
त्यों कवि भाषहिं अच्छर जोर । संत सुजस प्रगटहि चहुँओर ॥
जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा[1] होय ।
जो कवि अच्छर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

धर्माधिकार

इन्द्रवज्रा

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधकान्तवेसरीछन्द ।

सुपुरुप तीन पदारथ साधहिं । धर्म विशेष जान आराधहिं ।
धरम प्रधान कहैं सब कोय । अर्थ काम धर्महितै होय ॥
धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्मपंथसाधनविना, नर तिर्यंच समान ॥ ३ ॥

---

१ पाठभेद–जगमहिजश ।

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥

कवित्त मात्रिक (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष कोई धन कारण, हींडत दीपदीप चढ़ यान ।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि, डारत जलधि जान पाषान ॥
तैसे भ्रमत भ्रमत भवसागर, पावत नर शरीर परधान ।
धर्मजतन नहिं करत 'बनारसि' खोवत वादि जनम अज्ञान ॥४॥

मन्दाक्रान्ता

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्येधभारम् ॥
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थं
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

मतगयन्द (सवैया)

ज्यों मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै शठ; मूढ सुधारससौं पग धोवै ॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यौं यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै ॥५॥

शार्दूलविक्रीडित ।

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं,
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ।

विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं,
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥

कवित्त मात्रिक (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर उखारि कल्पतरु, बोवत मूढ कनकको[1] खेत ।
ज्यों गजराज बेच गिरिवर सम, क्रूर कुबुद्धि मोल खर[2] लेत ॥
जैसे छांड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखण्ड मन देत ।
तैसे धर्म विसारि 'बनारसि' धावत अधम विषयसुखहेत ॥६॥

शिखरिणी ।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः ।
ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥ ७ ॥

सोरठा ।

ज्यों जल बूड़त कोय, तज बाहन पाहन गहै ।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छांड़ि सेवत विषय ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

भक्तिं तीर्थकरे गुरौ जिनमते संघे च हिंसानृत-
स्तेयाब्रह्मपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम् ।

---

१ धतूरा । २ गधा ।

सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां
वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः ॥८॥

षट्पद ।

जिन पूजहु गुरुनमहु जैनमतवैन बखानहु ।
संघ भक्ति आदरहु, जीव हिंसा न विधानहु[1] ॥
झूठ अदत्त कुशील, त्याग परिगह परमानहु ।
क्रोध मान छल लोभ जीत, सज्जनथिति[2] ठानहु ॥
गुणिसग करहु इन्द्रिय दमहु, देहु दान तप भावजुत ।
गहि मन विराग इहिविधि चहहु जो जगमैं जीवनमुकत ॥ ८ ॥

पूजा धिकार ।

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं ।
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम् ।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥९॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

लोपै दुरित हरै दुख संकट; आपै रोग रहित नितदेह ।
पुण्य भँडार भरै जश प्रगटै; मुकति पंथसौं करै सनेह ॥

१ पाठभेद–नहि जानहु । २ पाठभेद–सज्जनता ।

रचै सुहाग देय शोभा जग; परभव पँहुचावै सुरगेह।
कुगति बंध दलमलहि 'बनारसि', वीतराग पूजा फल येह ॥९॥

स्वर्गस्तस्य गृहाङ्गणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुभा
सौभाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि।
संसारः सुतरः शिवं करतलक्रोडे लुठत्यञ्जसा
यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः ॥१०॥

देवलोक ताको घर आँगन; राजरिद्ध सेवैं तसु पाय।
ताके तन सौभाग आदि गुन; केलि विलास करैं नित आय॥
सोनर तुरत तरै भवसागर; निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य भाव विधि सहित 'बनारसि'; जो जिनवर पूजै मन लाय।१०।

शिखरिणी।

कदाचिन्नातङ्कः कुपित इव पश्यत्यभिमुखं
विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम्।
विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगतिः सङ्गमुदयो
न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चां रचयतः ॥११॥

ज्यौं नर रहै रिसाय कोपकर; त्यौं चिन्ताभय विमुख बखान।
ज्यौं कायर शंकै रिपु देखत, त्यौं दारिद भज्जै भय मान॥
ज्यौं कुनारि परिहरै खंडपति; त्यों दुर्गति छंडैं पहिचान।
हितु ज्यौं विभौ तजै नहिं संगत; सो सब जिनपूजाफल जान ॥११॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते
यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते ।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः॥

जो जिनंद पुज्जै फुल्लनिसौं; सुरनि-नैन पूजा तसु होय ।
वंदैं भावसहित जो जिनवर; वंदनीक त्रिभुवनमैं सोय ॥
जो जिन सुजस करै जन ताकी; महिमा इन्द्र करै सुरलोय ।
जो जिन ध्यान करहि 'बनारसि'; ध्यावहिं मुनि ताके गुण जोय ॥१२॥

गुरु अधिकार ।

वंशस्थविलम् ।

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः ।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम् ॥ १३ ॥

आभानक छन्द ।

पापपंथ परिहरहिं, धरहिं शुभपंथ पग ।
पर उपगार निमित्त, बखानहिं मोक्षमग ॥
सदा अवंछित चित्त; जु तारन तरन जग ।
ऐसे गुरुको सेवत; भागहिं करम ठग ॥ २३ ॥

मालिनी ।

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् ॥१४॥

गीता छन्द ।

मिथ्यात दलन सिद्धांत साधक, मुकतिमारग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति; पुण्य पाप बखानिये ॥
संसारसागरतरनतारन, गुरु जहाज विशेखिये ।
जगमाहि गुरुसम कह 'बनारसि', और कोउ न देखिये ॥ १४ ॥

शिखरणी ।

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनुनिवहः
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।
निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥१५॥

मत्तगयन्द ।

मात पिता सुत बन्धु सखीजन; मीत हितू सुखकारन पीके ।
सेवक राज मतंगज बाजि; महादल साजि रथी रथनीके ॥
दुर्गति जाय दुखी विललाय; परै सिर आय अकेलहि जीके ।
पंथ कुपंथ गुरू समझावत; और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमैः।
किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं
सर्वे येन विना त्रिनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः ॥

वस्तु छन्द।

ध्यान धारन ध्यान धारन, विषै सुख त्याग।
करुनारस आदरन; भूमि सैन इन्द्री निरोधन॥
व्रत संजम दान तप; भगति भाव सिद्धांत सोधन॥
ये सब काम न आवहीं; ज्यौं बिन नायक सैन॥
शिवसुख हेतु 'बनारसी'; कर प्रतीत गुरुवैन॥ १६॥

जिनमताधिकार।

शिखरिणी।

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेनं न कुगुरुं
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम्।
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नापि निपुणम्
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥१७॥

कुंडलिया छन्द।

देव अदेव हि नहीं लखै; सुगुरु कुगुरु नहिं सूझ।
धर्म अधर्म गनै नहीं; कर्म अकर्म न बूझ॥

कर्म अकर्म न बूझ; गुण रु औगुण नहिं जानहिं ।
हित अनहित नहिं सधै; निपुण मूरख नहिं मानहिं ॥
कहत 'बनारसि' ज्ञानदृष्टि नहिं अंध अवेवहिं ।
जैनवचनदृगहीन; लखै नहिं देव अदेवहिं ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-
निर्माणं गुणदोषभेदनकलां तेषामसंभाविनीम् ।
दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां
सार्वज्ञः समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथिः ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

ताको मनुज जनम सब निष्फल. मन निष्फल निष्फल जुगकान।
गुण अर दोष विचार भेद विधि; ताहि महा दुर्लभ है ज्ञान॥
ताको सुगम नरक दुख संकट; अगम पंथ पदवी निर्वान।
जिनमतवचन दयारसगर्भित; जे न सुनत सिद्धंत बखान ॥ १८॥

पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमः स्तोमव-
न्मित्रं शात्रववत्स्रजं भुजगवच्चिन्तामणिं लोष्टवत् ।
ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत्स मनुते कारुण्यपण्यापणं
जैनेंद्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥१९॥

छप्पयं ।

अमृतकहं विष कहैं; नीरकहं पावक मानहिं ।
तेज तिमरसम गिनहिं; मित्रकहं शत्रु बखानहिं ॥

पहुपमाल कहिं नाग; रतन पत्थर सम तुल्लहिं।
चंद्रकिरण आतप स्वरूप; इहि भांति जु भुल्लहिं॥
करुणानिधान अमलानगुन; प्रगट 'बनारसि' जैनमत।
परमत समान जो मनधरत; सो अजान मूरख अपत॥ १९॥

धर्मं जागरयत्यघं विघटयत्युत्थापयत्युत्पथं
भिन्ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मथ्नाति मिथ्यामतिम्।
वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य-
ज्जैनं मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती॥२०॥

मरहठा छन्द।

शुभ धर्म विकाशै, पापविनाशै; कुपथउथापनहार।
मिथ्यामतखंडै, कुनयविहंडै; मंडै दया अपार॥
तृष्णामदमारै, राग विडारै; यह जिनआगमसार।
जो पूजैं ध्यावै; पढै पढावैं; सो जगमाहिं उदार॥२०॥

संघ अधिकार।

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव
स्वर्गः कल्पमहीरुहामिव सरः पङ्केरुहाणामिव।
पाथोधिः पयसामिवेन्दुमहसां स्थानं गुणानामसा-
वित्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः॥

३१ मात्रा सवैया छन्द।

जैसैं नभमंडल तारागण; रोहनशिखर रतनकी खान।
ज्यों सुरलोक भूरि कलपद्रुम; ज्यों सरवर अंबुज वन जान॥

ज्यों समुद्र पूरन जलमंडित, ज्यों शशिछविसमूह सुखदान ।
तैसें संघ सकल गुणमन्दिर, सेवहु भावभगति मन आन ॥२१॥

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।
यस्मै स्वर्गपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते
स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यताम् ॥२१॥

जे संसार भोग आशा तज, ठानत मुकति पन्थकी दौर ।
जाकी सेव करत सुख उपजत, जिन समान उत्तम नहिं और ॥
इन्द्रादिक जाके पद वंदत, जो जंगम तीरथ शुचि ठौर ।
जामै नित निवास गुन संपति, सो श्री संघ जगत शिरमौर ॥ २२ ॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात्कीर्तिस्तमालिङ्गति
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।
स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते
यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥ २३ ॥

ताको आय मिलै सुखसंपति, कीरति रहै तिहूं जग छाय ।
जिनसों प्रीत बढै ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय ।
'बानारसि' गुनरास संघकी, जो नर भगति करै मनलाय ॥ २३ ॥

---

१ पाठभेद—मंडन

यद्भक्तेः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृषेः सस्यव-
चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिकं गीयते ।
शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः
संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम् ।।

जाके भगति मुकतिपदपावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ।
ज्यों कृषि करत धानफल उपजत, सहज पयार घास भुस होय ।।
जाके गुन जस जंपनकारन, सुरगुरु थकित होत मदखोय ।
सो श्रीसंघ पुनीत 'बनारसि', दुरित हरन बिचरत भविलोय ।। २४ ।।

अहिंसा अधिकार ।

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजः संहारवात्या भवो-
दन्वन्नौर्व्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम् ।
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला
सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ।। २५ ।।

सवैया ३१ ।

सुकृतकी खान इन्द्र पुरीकी निसैनी जान
पापरजखंडनको, पौनरासि पेखिये ।
भवदुखपावकबुझायवेको मेघमाला,
कमला मिलायवेको दूती ज्यों विशेखिये ।।
सुगति बधूसों प्रीत; पालवेकों आलीसम,
कुगति किवार दिढ़; आगलसी देखिये ।।

१ पाठभेद—कुगति के द्वार दिढ़ ।

ऐसी दया कीजै चित, तिहूँलोकप्राणीहित,
और करतूत काहू; लेखेमें न लेखिये ॥ २५ ॥

शिखरिणी।

यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥२६॥

आभानक छन्द।

जो पच्छिम रवि उगै; तिरै पाषाण जल।
जौ उलटै भुवि लोक; होय शीतल अनल ॥
जो सुमेरु डिगमगै, सिद्ध कहं लगै मल।
तब हू हिंसा करत; न उपजत पुण्यफल ॥ २६ ॥

मालिनी।

स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता-
दमृतमुरगवक्त्रात्साधुवादं विवादात्।
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा-
दभिलषति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७॥

सवैया ३१।

अगनिमैं जैसे अरविंद न विलोकियत;
सूर अँथवत जैसे बासर न मानिये।

सांपके वदन जैसे अमृत न उपजत;
कालकूट खाये जैसे जीवन न जानिये ॥
कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसे;
बाढ़तरसांस रोग नाश न बखानिये ।
प्राणी वधमांहिं तैसैं; धर्म की निशानी नाहिं,
याहीतै बनारसी विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

शार्दूल विक्रीडित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ।
आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरं
संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रान्तरम् ॥२८॥

३१ मात्रा सवैया छन्द

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम; गुण संपति आनंद निवास ।
उन्नत विभव सुगम भवसागर; तीन भवन महिमा परकास ॥
भुजबलवंत अनंतरूप छवि, रोगरहित नित भोगविलास ॥
जिनके चित्तदया तिनकेसुख, सब सुख होहि बनारसिदास ॥२८॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं दैवैः कृताराधनं
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम् ।
श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् ॥२६॥

षटपद ।

गुणनिवास विश्वास वास; दारिद्दुखखंडन ।
देवअराधन योग; मुकतिमारग मुखमंडन ॥
सुयशकेलि आराम; धाम सज्जन मनरंजन ।
नागबाघवशकरन; नीर पावक भयभंजन ॥
महिमा निधान सम्पतिसदन; मंगल मीत पुनीत मग ।
सुखरासि 'बनारसिदास' भन; सत्यबचन जयवंत जग ॥२६॥

शिखरिणी ।

यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनं
निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ।
न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा
कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जो भस्मंत करै निज कीरति; ज्यों वनअग्नि दहै वन सोय ।
जाके संग अनेक दुख उपजत; बढै वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
जामै धरम कथा नहिं सुनियत; ज्यों रवि बीच छांहि नहिं होय ।
सो मिथ्यात्व वचन बनारसि; गहत न ताहि विचक्षण कोय ॥३०॥

वंशस्थविलम् ।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासद्म समृद्धिवारणम् ।
विपन्निदानं परवञ्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम् ॥३१॥

रोडक छन्द ।

कुमति कुरीति निवासः प्रीति परतीति निवारन ।
रिद्धिसिद्धिसुखहरन; विपति दारिद दुख कारन ॥
परवंचन उतपत्ति; सहज अपराध कुलच्छन ।
सो यह मिथ्यावचन; नाहि आदरत विचच्छन ॥ ३१ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किङ्कराः
कान्तारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगारिर्मृगः ।
पातालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विषं
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्याञ्चितं वक्ति यः ॥३२॥

सवैया ३१ ।

पावकतैं जल होय; वारिधतैं थल होय,
शस्त्रतैं कमल होय; ग्राम होय बनतैं ।
कूपतैं विवर होय; पर्वततैं घर होय,
वासवतैं दास होय, हितू दुरजनतैं ॥
सिंहतैं कुरंग होय; व्याल स्यालअंग होय,
विषतैं पियूष होय; माला अहिफनतैं ।
विषमतैं सम होय, संकट न व्यापैं कोय,
एते गुन होय सत्य वादीके दरसतैं ॥ ३२ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-
स्तमभिसरति कीर्तिर्मुञ्चते तं भवार्तिः ।

स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं
परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

रोडक छन्द ।

ताहि रिद्धि अनुसरै, सिद्धि अभिलाष धरै मन ।
विपत संगपरिहरै; जगत विसरै सुजसघन ॥
भवआरति तिहिं तजै, कुगति वंछै न एक छन ।
सो सुरसम्पति लहै, गहै नहिं जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

शिखरणी

अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः
शुभश्रेणिस्तस्मिन्वसति कलहंसीव कमले ।
विपत्तस्माद्दूरं व्रजति रजनीवाम्बरमणे-
र्विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥ ३४ ॥

(३१ मात्रा) सवैया छन्द ।

ताको मिलै देवपद शिवपद, ज्यों विद्याधन लहै विनीत ।
तामैं आय रहै शुभ-पंकति, ज्यौं कलहंस कमलसों मीत ।
ताहि विलोकि दुरै दुख दारिद, ज्यौं रवि आगम रैन वितीत ।
जो अदत्त धन तजत 'वनारसि' पुण्यवंत सो पुरुष पुनीत ॥३४

शार्दूलविक्रीडित ।

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधनं सर्वागसां साधनं
प्रोन्मीलद्वधबन्धनं विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम् ।
दौर्गत्यैकनिबन्धनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं
प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ॥३५॥

मरहटा छन्द ।

जो कीरति गोपहि, धरम विलोपहि, करहि महाअपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुरगति लोरहि, जोरहि युद्ध उपाध ॥
जो संकट आनहिं, दुर्गति ठानहिं, वधबंधनको गेह ।
सब औगुण मंडित, गहै न पंडित, सो अदत्तधन येह ॥३५॥

हरिणी ।

परजनमनः पीडाक्रिडावनं वधभावना-
भवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमण्डलम् ।
कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं
नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकांक्षिणाम् ॥३६॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जो परिजन संताप केलिवन, जो वध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिबेलघनमंडल, जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दृढ आगल, जो अपहरण मुक्तिसुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन; निजहितहेत 'बनारसिदास' ॥३६॥

शीलाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक-
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥३७॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

सो अपजशको डंक बजावत, लावत कुल कलंक परधान ।
सो चारितको देत जलांजुलि, गुन वनको दावानल दान ॥
सो शिवपन्थकिवार बनावत, आपति विपति मिलनको थान ।
चिन्तामणि समान जग जो नर, शील रतन निजकरत मलान ॥३७॥

मालिनी ।

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्कं
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥३८॥

रोडक छन्द ।

कुल कलंक दलमलहि, पापमलपंक पखारहि ।
दारुन संकट हरहि, जगत महिमा विस्तारहि ॥
सुरग मुकति पद रचहि, सुकृतसंचहि करुणारसि ।
सुरगन वंदहि चरन, शीलगुण कहत 'बनारसि' ॥ ३८॥

शार्दूलविक्रीडित ।

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजन्ति क्षयं
कल्याणानि समुल्लसन्ति विबुधाः सांनिध्यमध्यासते ।
कीर्तिः स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघं
स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदधते ये शीलमाबिभ्रते ॥३९॥

मत्तगयन्द ।

ताहि न बाघ भुजंगमको भय, पानि न बोरै न पावक जालै ।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर, सो शुभ रीत करै अघ टालै ॥

तासु विवेक बढ़ै घट अंतर, सो सुरके शिवके सुख भालै।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग, जो नर शील अखंडित पालै ॥३९॥

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति च्वेडोऽपि पीयूषति।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद्ध्रुवम्॥४०

षट्पद।

अगनि नीरसम होय, मालसम होय भुजंगम।
नाहर मृगसम होय, कुटिल गज होय तुरंगम॥
विष पियूषसम होय, शिखरपाषान खंडमित।
विघन उलटि आनंद, होय रिपुपलटि होय हित॥
लीलातलावसम उदधिजल, गृहसमान अटवी विकट।
इहिविधि अनेक दुख होहिं सुख, शीलवंत नरके निकट॥

परिग्रहाधिकार।

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन्धर्मद्रुमोन्मूलनं
क्लिश्नन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीं लोभाम्बुधिं वर्धयन्।
मर्यादातटमुद्रुजञ्छुभमनोहंसप्रवासं दिश-
न्किं न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः॥४१॥

(३१ मात्रा) सवैया।

अंतर मलिन होय निज जीवन, विनसै धर्मतरोवरमूल।
किलसै दयानीतिनलिनीवन, धरै लोभ सागर तनथूल॥

उठै वाद मरजाद मिटै सब, सुजन हंस नहिं पावहिं कूल।
बढ़त पूर पूरै दुख संकट, यह परिग्रह सरितासम तूल॥ ४१॥

मालिनी।

कलहकलभविन्ध्यः कोपगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु-
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः॥ ४२॥

मनहरण।

कलह गयन्द उपजायवेको विंध्यगिरि;
कोप गीधके अघायवेको समशान है।
संकट भुजंगके निवास करिवेको विल
वैरभाव चौरको महानिशा समान है॥
कोमल सुगुनघनखंडवेको महा पौन,
पुण्यवन दाहिवेको दावानल दान है।
नीत नय नीरज नसायवेको हिम राशि,
ऐसो परिग्रह राग दुखको निधान है॥ ४२॥

शार्दूलविक्रीडित।

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभूः
पापानां खनिरापदां पदमसद्ध्यानस्य लीलावनम्।
व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः
केलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम्॥४३॥

प्रशमको अहित अधीरजको वाल हित;
महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है।
भ्रमको निधान दुरध्यानको विलासवन;
विपतको थान अभिमानकी निशानी है॥
दुरितको खेत रोग शोग उतपति हेत;
कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है।
ऐंसो परिग्रह भोग सवनिको त्याग जोग;
आतम गवेपीलोग याही भांति जानी है॥ ४३॥

वह्निस्तृप्यति नेन्धनैरिह यथा नाम्भोभिरम्भोनिधि-
स्तद्वल्लोभघनो घनैरपि धनैर्जन्तुर्न संतुष्यति।
न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भव
यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम्॥

षट्पद।

ज्यों नहिं अग्नि अघाय; पाय ईंधन अनेक विधि।
ज्यों सरिता घन नीर; तृपति नहिं होय नीरनिधि॥
त्यों असंख धन वढत, मूढ संतोष न मानहिं।
पाप करत नहिं डरत; वंध कारन मन आनहिं॥
परतछ विलोकि जम्मन मरन; अथिर रूप संसारक्रम।
समुझै न आप पर ताप गुन; प्रगट 'वनारसि' मोह भ्रम॥४४॥

क्रोधाधिकार

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्राससंपादने
सर्पस्य प्रतिविम्बमङ्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः।

चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः सब्रह्मचारी चिरं
स क्रोधः कुशलाभिलाषकुशलैर्निर्मूलमुन्मूल्यताम् ।४४।

गीताछन्द ।

जो सुजन चित्त विकार कारन; मनहु मदिरा पान ।
जो भरम भय चिन्ता बढ़ावत, असित सर्प समान ॥
जो जंतु जीवन हरन विषतरु; तनदहनदवदान ।
सो कोपराशि विनाशि भविजन, लहहु शिव सुखथान ॥ ४५ ॥

हरिणी ।

फलति कलितश्रेयः श्रेणीप्रसूनपरम्परः
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्तिं तपश्चरणद्रुमः ।
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्तिं प्रकोपहविर्भुजो
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥४६॥

३१ मात्रा सवैया ।

जब मुनि कोइ बोई तप तरुवर; उपशम जल सींचत चितखेत ।
उदित ज्ञान शाखा गुण पल्लव; मंगल पहुप मुकत फलहेत ॥
तब तिहि क्रोध दवानल उपजत, महामोह दल पवन समेत ।
सो भस्मंत करत छिन अंतर, दाहत विरखसहित मुनिचेत ॥ ४६ ॥

शार्दूलविक्रिडित ।

संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय-
त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कलिम् ।
कीर्तिं कृन्तति दुर्मतिं वितरति व्याहन्ति पुण्योदयं
दत्ते यः कुगतिं स हातुमुचितो रोषः सदोषः सताम् ॥

वस्तुछन्द ।

कलह मंडन कलह मंडन करन उद्वेग ।
यशखंडन हित हरन, दुखविलापसंतापसाधन ॥
दुरवैन समुच्चरन, धरम पुण्य मारग-विराधन ।
विनय दमन दुरगति गमन, कुमति रमन गुणलोप ।
ये सब लक्षण जान मुनि, तजहि ततक्षण कोप ॥ ४७ ॥

यो धर्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां
दन्तीवेन्दुकलां विधुंतुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम् ।
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं
तृष्णां धर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम् ।४८।

षट्पद ।

कोप धरम धन दहै, अगनि जिम विरख विनासहि ।
कोप सुजस आवरहि, राहु जिम चंद गरासहि ॥
कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता विहंडहि ।
कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर खंडहि ॥
संचरत कोप दुख ऊपजै, वढै तृषा जिम धूपमहँ ।
करुणा विलोप गुण गोप जुत, कोप निषेध महंत कहँ ॥ ४९ ॥

मानाधिकार.

मन्दाक्रान्ता ।

यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां
यस्मिञ्शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति ।

यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं
तं मानाद्रिं परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्ते ॥४९॥

(मात्रा ३१) सवैया ।

जातै निकसि विपति सरिता सब; जगमें फैल रही चहुं ओर ।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं, माया कुमतिगुफा अति घोर ॥
जहँवधबुद्धि धूमरेखा सम; उदित कोप दावानल जोर ।
सो अभिमान पहार पटंतर. तजत ताहि सर्वज्ञकिशोर ॥४९॥

शिखरिणी ।

शमालानं भञ्जन्विमलमतिनाडीं विघटय-
न्किरन्दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमसृणिम् ।
भ्रमन्नुर्व्यां स्वैरं विनयवनवीथीं विदलयन्,
जनः कं नानर्थं जनयति मदान्धो द्विप इव ॥५०॥

रोडक छन्द ।

भंजहिं उपशम थंभ; सुमति जंजीर विहंडहिं ।
कुवचन रज संग्रहहिं: विनयवनपंकति खंडहिं ॥
जगमें फिरहिं स्वछन्द; वेद अंकुश नहिं मानहिं ।
गज ज्यों नर मदअन्ध; सहज सब अनरथ ठानहिं ॥५०॥

शार्दूलविक्रीडित ।

औचित्याचरणं विलुम्पति पयोवाहं नभस्वानिव
प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम् ।

कीर्तिं कैरविणीं मतङ्गज इव प्रोन्मूलयत्यञ्जसा
मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ॥५०॥

करिखा छन्द ।

मान सब उचित आचार भंजन करै;
पवन संचार जिम घन विहंडहि ।
मान आदर तनय विनय लोपै सकल;
भुजग विष भीर जिम मरन मंडहि ॥
मानके उदित जगमाहिं विनसै सुयश;
कुपित मातंग जिम कुमुद खंडहि ।
मानकी रीति विपरीति करतूति जिम;
अधमकी प्रीति नर नीत छंडहि ॥ ५१ ॥

वसन्ततिलका ।

मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
संजीवनं विनयजीवितमङ्गभाजाम् ।
जात्यादिमानविषजं विषमं विकारं
तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम् ॥ ५२ ॥

(मात्रा १५) चौपाई ।

मान विषम विषतन संचरै । विनय विनाशै वाँ ,
कोमल गुन अमृत संजोग । विनशै मान विषम

मायाधिकार.

मालिनी ।

कुशलजननवन्ध्यां सत्यसूर्यास्तसंध्यां
कुगतियुवतिमालां मोहमातङ्गशालाम् ।
शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं
व्यसनशतसहायां दूरतो मुञ्च मायाम् ॥५३॥

रोडक छन्द ।

कुशल जननकों बाँझ; सत्य रविहरन सांझथिति ।
कुगति युवति उरमाल; मोह कुंजर निवास छिति ॥
शम वारिज हिमराशि, पाप संताप सहायनि ।
अयश खानि जग जान; तजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

उपेन्द्रवज्रा ।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।
ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखाः स्वमेव ॥५४॥

वेसरि छन्द ।

मोह मगन माया मति संचहि । करि उपाय औरनको बंचहि ।
अपनी हानि लखै नहिं सोय । सुगति हरै दुर्गति दुख होय ॥५४॥

वंशस्थविलम् ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।

सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते
यथा बिडालो लगुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

पद्धरि छन्द ।

माया अविश्वास विलास गेह । जो करहि मूढ जन धन सनेह ।
सो कुगति बंध नहि लखै एम । तजि भय बिलाव पय पियत जेम ॥५५॥

वसन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते
यत्पाटवं कपटलम्पटचित्तवृत्तेः ।
जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा
नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

अभानक छन्द ।

ज्यों रोगी कर कुपथ; बढावै रोग तन ।
स्वादलंपटी भयो, कहै सुक्ख जनम धन ॥
त्यों कपटी करि कपट; मुगधको धन हरहि ।
करहि कुगतिको बंध; हरप मनमें धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

यद्दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं
गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥ ५७ ॥

मनहरण ।

सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमैं;
कंपै चितभीत पंथ; गाहै बीच वनमैं।
ठानै कृषिकर्म जामें; शर्मको न लेश कहुं;
संकलेशरूप होय; जूझ मरै रनमैं ॥
तजै निज धामको विराम परदेश धावै;
सेवै प्रभु कृपण मलीन रहै मनमैं।
डोलै धन कारज अनारज मनुज मूढ;
ऐसो करतूति करै; लोभकी लगनमैं ॥ ५७ ॥

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भवः
क्रोधाग्नेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः।
क्रीडासद्मकलेर्विवेकशशिनः स्वर्भानुरापन्नदी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ॥ ५८

पूरन प्रताप रवि, रोकिवेको धाराधर;
सुकृति समुद्र सोखिवेको कुम्भनंद है।
कोप दव पावक जननको अरणि दारु;
मोह विष भूरुहको; महा दृढ कंद है ॥
परम विवेक निशिमणि ग्रसिवेको राहु;
कीरति लता कलाप; दलन गयंद है।
कलहको केलिभौन आपदा नदीको सिंधु,
ऐसो लोभ याहूको विपाक दुख द्वंद है ॥ ५८॥

वसंततिलका।

निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे
दुःखौघभस्मनि विसपद्कीर्तिधूमे।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने
लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ५६ ॥

परम धरम वन दहै, दुरित अंबर गति धारहि।
कुयश धूम उदगरै; भूरि भय भस्म विथारहि॥
दुख फलंग फुंकरै; तरल तृष्णा कल काढहि।
धन ईंधन आगम; सँजोग दिन दिन अति बाढहि॥
लहलहै लोभ पावक प्रबल; पवन मोह उद्धत बहै।
दज्झहि उदारता आदि बहु; गुण पतंग कँवरा कहै॥ ५६॥

शार्दूलविक्रीडित।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहं
चिन्तारत्नुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम्।
विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियो
ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं बिभ्रते॥ ६० ॥

(३१ मात्र) सवैया।

विलसै कामधेनु ताके घर; पूरै कल्पवृक्ष सुखपोष।
अखय भँडार भरै चिंतामणि; तिनको सुलभ सुरग औ मोष॥
ते नर स्ववश करैं त्रिभुवनको; तिनसों विमुख रहै दुख दोप।
सबै निधान सदा ताके ढिग; जिनके हृदय बसत संतोष॥ ६७॥

सज्जनाधिकार.

शिखरिणी ।

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदलनकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥ ६१

(१६ मात्रा) चौपाई ।

वरु अहिवदन हत्थ निज डारहिं । अगनि कुंडमें तनपर जारहिं ।
दारहिं उदर करहिं विष भक्षन । पै दुष्टता न गहहि विचक्षन ॥६१॥

वसन्ततिलका ।

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च ।
स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च ।
दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थम्
धान्येऽनलं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

ज्यो कृषिकार भयो चितवातुल; सो कृपिकी करनी इम ठाने ।
वीज बवै न करै जल सिंचन; पावकसों फलको थल भानें ॥
त्यों कुमती निज-स्वारथके हित; दुर्जनभाव हिये माहि आनें ।
संपति कारन वंध विदारन; सज्जनता सुखमूल न जानें ॥ ६२ ॥

पृथ्वी ।

वरं विभववन्ध्यता सुजनभावभाजां नृणा-
मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिताः संपदः ।
कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं
विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता ॥ ६३ ॥

आभानक छन्द ।

वरु दारिद्रता होउ, करत सज्जन कला ।
दुराचारसों मिलै, राज सो नहि भला ॥
ज्यो शरीर कृश सहज; सुशोभा देत है ।
सूजी थूलता बढै, मरनको हेत है ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं
संतोषं वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम् ।
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लङ्घय-
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥६४॥

षट्पद ।

नहिं जंपहि पर दोष, अल्प परगुण बहु मानहि ।
हृदय धरहि संतोष, दीन लखि करुणा ठानहि ॥
उचित रीति आदरहि, विमल नय नीति न छंडहि ।
निज सलहन परिहरहि, राम रचि विषय विहंडहि ॥
मंडहि न कोप दुरवचन सुनि, सहज मधुर धुनि उच्चरहि ।
कहि 'कवरपाल' जग जाल बसि, ये चरित्र सज्जन करहि ॥६४॥

गुणिसंगाधिकार ।

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमा-
न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधः श्रुतम् ।
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ
यः सङ्गं गुणिनां विमुच्य विमतिः कल्याणमाकांक्षति ॥

मत्तगयन्द (सवैया)

सो करुणाविन धर्म विचारत, नैन विना लखिवेको उमाहै ।
सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै ॥
सो हियशून्य कवित्त करै, समता विन सो तपसों तन दाहै ।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ, जो सत संग तजै हित चाहै ।

हारिणी

हरति कुमतिं भिन्ते मोहं करोति विवेकितां
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम् ।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणां किं नामीष्टं गुणोत्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

घनाक्षरी ।

कुमति निकंद होय महा मोह मंद होय;
जगमगै सुयश विवेक जगै हियसों ।
नीतिको दिढाव होय विनैको वढाव होय;
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों ॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय;

वरतै समाधिं ज्यों पियूष रस पियेसों।
तोप परि पूर होय; दोष दृष्टि दूर होय,
एते गुन होहिं सत-संगतिके कियेसौं ।। ६६ ।।

शार्दूलविक्रीडित

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम्।
रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियं
चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां सङ्गं तदङ्गीकुरु ।।६७।।

कुंडलिया।

'कौरा' ते मारग गहै, जे गुनिजनसेवंत।
ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं भव अंत ।।
ते पावहिं भव अंत, शांत रस ते चित धारहिं।
ते अघ आपद हरहि, धरमकीरति विस्तारहिं ।।
होंहिं सहज जे पुरुष, गुनी वारिज के भौंरा।
ते सुर संपति लहैं, गहैं ते मारग 'कौरा' ।। ६७ ।।

हारिणी।

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति।
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनीतिलतासु यः
किमभिलषतां श्रेयः श्रेयान्स निर्गुणिसंगमः ।। ६८ ।।

षपटद।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहि ।।
जो प्रताप संहरहि, पवन जिम मेघ विडारहि ।।

जो सम दम दलमलहि, दुरद जिम उपवन खंडहि।
जो सुछेम छय करहि, वज्र जिम शिखर विहंडहि॥
जो कुमति अग्नि ईंधनसरिस, कुनयलता दृढ मूल जग।
सो दुष्टसंग दुख पुञ्ज कर, तजहि विचक्षणता सुमग॥ ६८॥

इन्द्रियाधिकार।

शार्दूलविक्रीडित।

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूकलाश्वायते
कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ यः कृष्णसर्पायते।
यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव॥ ६९॥

हरिगीतिका।

जे जगत जनको कुपथ डारहिं, वक्र शिक्षित तुरगसे।
जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे॥
जे पुण्यवृक्षकुठार तीखन, गुपति व्रत मुद्रा करैं।
ते करनसुभट प्रहार भविजन, तब सुमारग पग धरैं॥ ६९॥

शिखरिणी।

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं
पदं तद्दोषाणां करणनिकुरम्बं कुरु वशे॥ ७०॥

घनाक्षरी ।

ये ही हैं कुगतिके निदानी दुख दोष दानी;
इनहीकी संगतसो संग भार बाहिये ।
इनकी मगनतासों विभोको विनाश होय,
इनहीकी प्रीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों विडारै दुराचार धारै,
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री सुभट इनहिं जीतै सोई साधु,
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥ ७० ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

धत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां -तपस्तप्यताम् ।
श्रेयः पुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीत सर्वं ततः ॥७१॥

सवैया ।

मौनके धरैया गृह त्यागके करैया विधि,
रीतके सधैया पर निन्दासों अपूठे हैं ।
विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके बासी शुचि,[१]
अंगके अचारी हितकारी बैन बूठे हैं ।
आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी;
कष्टके सहनहार रामाहुसों रूठे हैं ॥

१ छूठे–पाठ भेद है ।

इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते,
इन्द्रिनके जीते विना सरवंग झूठे हैं ॥ ७१ ॥

शार्दूल विक्रडित ।

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मीणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।
सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टे यथा
कामीनं कुपथाध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक् ॥७२॥

सवैया ।

धर्मतरुभंजनको महा मत्त कुंजरसे;
आपदा भंडारके भरनको करोरी हैं ।
सत्यशील रोकवेको पौढ परदार जैसे;
दुर्गतिके मारग चलायवेकों धोरी हैं ॥
कुमतिके अधिकारी कुनैपंथके विहारी;
भद्रभाव ईंधन जरायवेकों होरी है ।
मृषाके सहाई दुरभावनाके भाई ऐसे,
विषयाभिलाषी जीव अघके अघोरी हैं ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

शार्दूल विक्रीडित ।

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते
चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति॥७३॥

मत्तगन्द छन्द ।

नीचकी ओर ढरै सरिता जिम, घूम बढ़ावत नींदकी नाई ।
चंचलता प्रघटै चपला जिम, अंध करै जिम धूमकी झाई ॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद; ज्यों मद पोषित मूढ़की तांई ।
ये करतूति करै कमला जग; डोलत ज्यों कुलटा विन सांई ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठा-
द्दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ॥७४॥

सवैया ।

वंधु विरोध करै निशवासर, दंडनकों नरवै[1] छल जोवै ।
पावक दाहत नीर बहावत, ह्वै दगओट गिशाचर ढोवै ॥
भूतल रक्षित जक्ष हरै करकै दुरप्रवृत्ति कुसंतति खोवै ।
ये उतपात उठै धनके ढिग; दामधनी कहु क्यों सुख सोवै ॥ ७४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

नीचस्यापि चिरं चटूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नतिं
शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम् ।
निर्वेदं न विदन्ति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे
कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति वित्तार्थिनः ॥

---

१. राजा ।

घनाक्षरी ।

नीच धनवंत ताहि निरख असीस देय;
वह न विलोकै यह चरन गहत है ।
वह अकृतज्ञ नर यह अज्ञताको घर;
वह मद लीन यह दीनता कहत है ।
वह चित्त कोप ठानै यह वाको प्रभु मानै,
वाके कुवचन सब यह पै सहत है ।
ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुण दोष;
अरथाभिलाषी जीव अरथ चहत है ॥ ७५ ॥

शार्दूल विक्रीडित ।

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः सङ्गादिवाम्भोजिनी-
संसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम् ।
चैतन्यं विषसंनिधेरिव नृणामुज्जासयत्यञ्जसा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ॥ ७

सवैया ।

नीचहीकी ओरको उमंग चलै कमला सो;
पिता सिंधु सलिलस्वभाव याहि दियो है ।
रहै न सुथिर ह्वै सकंटक चरन याको;
वसी कंजमाहिं कंजकोसो पद कियो है ॥
जाको मिलै हितसों अचेत कर डारै ताहि;
विषकी बहन तातै विषकोसो हियो है ।
ऐसी ठगहारी जिन धरमके पंथडारी;
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है ॥ ७६ ।

दानाधिकार.

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं
पुष्णाति प्रशमं तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम् ।
पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा-
न्निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रे धनम् ॥७७

कवित्त

चरन अखंड ज्ञान अति उज्जल; विनय विवेक प्रशम अमलान ।
अनघ सुभाव सुकृति गुन संचय; उच्च अमरपद बंध विधान ॥
आगमगम्य रम्य तपकी रुचि; उद्धत मुकति पंथ सोपान ।
ये गुण प्रकट होंय तिनके घट; जे नर देहिं सुपत्तहिं दान ॥ ७७ ॥

दारिद्र्यं न समीक्षते न भजते दौर्भाग्यमालम्बते
नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।
दैन्यं नाद्रियते दुनोति न दरः क्लिश्नन्ति नैवापदः
पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥ ७८

षट्पद ।

सो दरिद्र दल मलहि; ताहि दुर्भाग न गंजहि ।
सो न लहै अपमान; सु तो विपदा भयभंजहि ॥
तिहि न कोइ दुख देहि, तासु तन व्याधि न बड्ढइ ।
ताहि कुयश परहरहि, सुमुख दीनता न कड्ढइ ॥
सो लहहि उच्चपद जगत महँ, अघ अनरथ नासहि सरव ।

कहै कुँवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरब ॥७८॥

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोकते
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालिङ्गति ।
श्रेयःसंहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
र्मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यार्थमर्थं निजम् ॥

सवैया इकतीसा

ताहिको सुबुद्धि बरै रमा ताकी चाह करै ।
चंदन सरूप हो सुयश ताहि चरचै ।
सहज सुहाग पावै सुरग समीप आवै,
बार बार मुकति रमनि ताहि अरचै ॥
ताहिके शरीरकों अलिंगति अरोगताई,
मंगल करै मिताई प्रीति करै परचै ।
जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरमके हेतको सुखेत धन खरचै ॥ ७९ ॥

मन्दाक्रान्ता ।

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः ।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंपत्
सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥ ८० ॥

पद्मावती छन्द ।

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै ।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो सुरलोक संपदा पावै ॥

ताको दृष्टि लखै शिव मारग, सो निरबंध भावना भावै।
जो नर त्याग कपट 'कुंवरा' कह, विधिसों सप्तखेत धन बावै ॥८०॥

तपप्रभावाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं यत्कामदावानल-
ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम् ।
यत्प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता-
मूलं तद्द्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ॥८१॥

षटपद् ।

जो पूरब कृत कर्म, पिंड गिरदलन वज्रधर ।
जो मनमथ दव ज्वाल, माल सँग हरन मेघझर ॥
जो प्रचंड इंद्रिय भुजंग, थंभन सुमंत्र वर ।
जो विभाव संतम सुपुंज, खंडन प्रभात कर ॥
जो लब्धि वेल उपजंत घट, तासु मूल दृढता सहित ।
सो सुतप अंग बहुविधि दुविधि, करहि विबुधि बंछारहित ॥ ८१ ॥

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति ।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणां
स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥

घनाक्षरी ।

जाके आदरत महा रिद्धिसों मिलाप होय,
मदन अव्याप होय कर्म वन दाहिये ।

विघन विनास होय गीरवाण दास होय,
ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये ॥
देवपद खेल होय मंगलसों मेल होय,
इन्द्रिनिकी जेल होय मोखपंथ गाहिये ।
जाकी ऐसी महिमा प्रकट कहै "कौंरपाल",
तिहुलोक तिहुंकाल सो तप सराहिये ॥ ८२ ॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना
दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम् ।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरं
कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा ॥८३

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनकों दव; पावकसों नहिं दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततत्तण; जो न अखंडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत; तौलग घोर घटा नहि खीसै ।
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ; कर्मकुलाचल और न पीसै ॥८३॥

स्रग्धरा ।

संतोपस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।
श्रद्धाम्भःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपःकल्पवृक्षः ॥

षट्पद ।

सुदृढ मूल संतोष; प्रशम गुन प्रबल पेड ध्रुव ।
पंचाचार सु शाख; शील संपति प्रवाल हुव ॥
अभय अंग दलपुंज; देवपद पहुप सुमंडित ।
सुकृतभाव विस्तार; भाव शिव सुफल अखंडित ॥
परतीत धार जल सिंच किय; अति उतंग दिन दिन पुषित।
जयवंत जगत यह सुतपतरु; मुनि विहंग सेवहिं सुखित ॥ ८४ ॥

भावनाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभोः
सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।
विष्वग्वर्षमिवोषरक्षितितले दानार्हदर्चातपः-
स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम् ॥

पद्मावती छन्द ।

ज्यों नीराग पुरुषके सनमुख; पुरकामिनि कटाक्ष कर ऊठी ।
ज्यों धन त्यागरहित प्रभुसेवन; ऊसरमें वरषा जिम छूठी ॥
ज्यों शिलमाहिं कमलको बोवन, पवन पकर जिम बांधिये मूठी ।
ये करतूति होय जिम निष्फल; त्यों विनभावक्रिया सब झूंठी ॥८५॥

सर्वं ज्ञीप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ।

कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सते
मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ॥८६

घनाक्षरी ।

पूरब करम दहैं; सरवज्ञ पद लहैं;
गहैं पुण्यपंथ फिर पापमें न आवना ।
करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै;
लागै दानशील तप सफल सुहावना ॥
पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट;
शर्म साध धर्मकी धरामें करै धावना ।
एते सब काज करै अलखको अंगधरै;
चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना ॥ ८६ ॥

पृथ्वी ।

विवेकवनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीवनीं
भवार्णवमहातरीं मदनदावमेघावलीम् ।
चलाक्षमृगवागुरां गुरुकषायशैलाशनिं
विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥८७

सवैया इकतीसा

प्रशमके पोषवेको अमृतकी धारासम;
ज्ञानवन सींचवेको नदी नीरभरी है ।
चंचल करण मृग बांधवेको वागुरासी;
कामदावानल नासवेको मेघ झरी है ।

प्रबल कषायगिरि भंजवेको बज्र गदा,
भौ समुद्र तारवेको पौढी महा तरी है।
मोक्षपन्थ गाहवेकों वेशरी विलायतकी,
ऐसी शुद्ध भावना अखंड धार ढरी है॥ ८७॥

शिखरिणी।

घनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं
क्रियाकाण्डं चण्डं रचितमवनौ सुप्तमसकृत्।
तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि चीर्णं चिरतरं
न चेच्चित्ते भावस्तुषवपनवत्सर्वमफलम्॥८८॥

आभानक छन्द।

गहि पुनीत आचार, जिनागम जोवना।
कर तप संजम दान, भूमि का सोवना॥
ए करनी सब निफल, होय विन भावना॥
ज्यों तुष बोए हाथ, कछू नहिं आवना॥८८॥

वैरागाधिकार।

हारिणी।

यदशुभरजःपाथो दृप्तेन्द्रियद्विरदाङ्कुशं
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिशृङ्खला।
विरतिरमणीलीलावेश्म स्मरज्वरभेषजं
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाभयः॥८९

घनाक्षरी।

अशुभता धूर हरवेकों नीर-पूर सम,
विमल विरत-कुलबधू को सुहाग है।
उदित मदन-जुर नाशवेकों जुरांकुश,
अक्षगज थंभनको अंकुशको दाग है॥
चंचल कुमन कपि रोकवेको लोहफन्द,
कुशल कुसुम उपजायवेको बाग है।
सूधा मोक्षमारग चलायवेको नामी रथ
ऐसो हितकारी भयभंजन विराग है॥ ८९॥

वसन्ततिलका।

चण्डानिलः स्फुरितमब्दचयं दवार्चि-
र्वृक्षव्रजं तिमिरमण्डलमर्कबिम्बम्।
वज्रं महीध्रनिवहं नयते यथान्तं
वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम्॥ ९०॥

अभानक छन्द।

ज्यों समीर गंभीर, घनाघन छय करै।
बज्र विदारै शिखर, दिवाकर तम हरै॥
ज्यो दव पावक पूर, दहै वनकुंजको।
त्यों भंजै वैराग, करमके पुंजको॥ ९०॥

शिखरिणी।

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो-
स्तपस्या निःसीमक्लमपदमुपास्या गुणवताम्।

निषद्यारण्ये स्यात्करणदमविद्या च शिवदा
विरागः क्रूरागःक्षपणनिपुणोऽन्तः स्फुरति चेत् ॥

पद्मावती छन्द ।

कीनी तिन सुदेवकी पूजा, तिन गुरुचरणकमल चित लायो ।
सो बनवास बस्यो निशवासर, तिन गुनवंत पुरुष यश गायो ॥
तिन तप लियो कियो इन्द्री दम, सो पूरन विद्या पढ आयो ।
सब अपराध गए ताकों तज, जिन वैरागरूप धन पायो ॥ ६१ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

भोगान्कृष्णभुजङ्गभोगविषमान्राज्यं रजःसंनिभं
बन्धून्बन्धनिबन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ।
भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यजं-
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान् ॥

घनाक्षरी छन्द ।

जाकों भोग भाव दीसै कारे नागकेसे फन,
राजाको समाज दीखै जैसो रजकोष है ।
जाको परवारको बढाव घेराबंध सूझै,
विषै सुख सौंजकों विचारै विषपोष है ॥
लसै यों विभूति ज्यों भसमिको विभूति कहै,
बनता विलासमैं विलोकै दृढ दोष है ।
ऐसो आन त्यागै यह महिमा विरागताकी,
ताहीको वैराग सही ताके ढिग मोष है ॥ ६२ ।

इति २२ अधिकार समाप्त ।

अथ उपदेश गाथा।

उपेन्द्रवज्रा।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम्।
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ॥९२

मत्तगयन्द।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो गुरुकी उपसर्पन कीजे।
दीन विलोक दया धरिये चित, प्रासुक दान सुपत्तहि दीजे॥
गाहक हो गुनको गहिये, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे।
ये करनी करिये गृह में बस, यो जगमें नरभौ फल लीजे॥ ९३॥

शिखरिणी।

त्रिसंध्यं देवार्चां विरचय च यं प्रापय यशः
श्रियः पात्रे वापं जनय नयमार्गं नय मनः।
स्मरक्रोधाद्यारीन्दलय कलय प्राणिषु दयां,
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम्॥

हरिगीता छन्द।

जो करै साध त्रिकाल सुमरण, जास जगयश विस्तरै।
जो सुनै परमानहिं सुरुचिसों, नीत मारग पग धरै॥
जो निरख दीन दया प्रभु जै, कामक्रोधादिक हरै।
जो सुधन सप्त सुखेत खरचै, ताहि शिवसंपति बरै॥ ९४॥

शार्दूलविक्रीडित।

कृत्वार्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं,
हित्वा सङ्गमधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्त्वा धनम्।
गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वान्तरारिव्रजं
स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखम्॥

वस्तु छन्द।

देव पुज्जहिं देव पुज्जहिं, रचहिं गुरु सेव।
परमागमरुचि धरहिं, तजहि दुष्टसंगत ततच्छण।
गुणि संगति आदरहिं, करहिं त्याग दुर्भक्ष भच्छण॥
देहिं सुपात्रहि दान नित, जपै पंचनवकार।
ये करनी जे आचरहिं, ते पावै भवपार॥ ९५॥

हारिणी।

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-
भ्युदयजननी याति स्फीतिं यथा गुणसन्ततिः।
कलयति यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः
कुशलसुलभे न्याय्ये कार्यं तथा पथि वर्तनम्॥९६॥

दोहा छन्द।

गुन अरु धर्म सुथिर रहै, यश प्रताप गंभीर।
कुशल वृक्ष जिम लह लहै, तिहिं मारग चल वीर!॥ ९६॥

शिखरिणी।

करे श्लाघ्यस्त्यागः-शिरसि-गुरुपादप्रणमनं-
मुखे सत्या वाणी श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः।

हृदि स्वच्छा वृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो—
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६७॥

कवित्त छन्द ।

वंदन विनय मुकट सिर ऊपर, सुगुरुवचन कुंडल जुगकान।
अंतर शत्रविजय भुजमंडन, मुकतमाल उर गुन अमलान॥
त्याग सहज कर कटक विराजत, शोभित सत्य बचन मुख पान।
भूषण तजहिं तऊ तन मंडित, यातैं सन्तपुरुष परधान॥ ६७॥

सादूर्लविक्रीडित।

वाञ्छा सज्जनसंगमे गुरुजने प्रीतिर्गुरोर्नम्रता,
विद्याया व्यसनं स्वयोषितिरतिर्लोकापवाद्भयं ।
भक्तिश्चार्हति शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिःखले,
यस्यैताः परिणामसुन्दरकलाः श्लाघ्यः स एव क्षितौ ॥६८॥

घनाक्षरी ।

गहैं जे सुजन रीत गुणी सों निवाहैं प्रीत,
सेवा साधैं गुरुकी विनैसों कर जोरकैं।
विद्याको विसन धरैं परतिय संग हरैं,
दुर्जनकी संगतिसों बैठे मुख मोरकै॥
तजैं लोकनिन्द्य काज पूजैं देव जिनराज,
करैं जे करन थिर उमंग बहोरकैं।
तेई जीव सुखी होंय तेई मोख मुखी होंय,
तेई होंहिं परम करम फन्द तोरकै॥ ६८॥

शार्दूलविक्रीडित ।

निन्दां मुञ्च शमामृतेन हृदयं स्वं सिंच वंच क्रुधं,
सन्तोषं भज लोभमुत्सृज जनेष्वात्मप्रशंसां त्यज ।
मायां वर्जय कर्म तर्जय यशः साधर्मिकेष्वर्जय,
श्रेयो धारय हंत वारयमदं स्वं संसृतेस्तारय ॥ ६६ ॥

घनाक्षरी ।

परनिन्दा त्याग कर मनमें वैराग धर,
क्रोध मान माया लोभ चारों परिहर रे ॥
हिरदेमैं तोष गहु समतासों सीरो रहु,
धरमको भेद लहु खेदमें न पर रे ॥
करमको वंश खोय मुकतिको पन्थ जोय,
सुकृतिको बीज बोय दुर्गतिसों डर रे ।
अरे नर ऐसो होहि बार बार कहूं तोहि,
नहिं तो सिधार तूं निगोद तेरो घर रे ॥ ६६ ॥

आलस्यं त्यज श्रेयोद्यममलं सेवस्व पादौ गुरोः,
दुष्पापानि वचांसि कृत्यमखिलं जानीह्यकृत्यं तथा ।
देवं पूजय संघमर्चय कृपामन्योपकारं तपो-
दानं सत्यवचो भवाद्भयमयं पंथा ऋजु सद्गतेः ॥१००॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

आलश त्याग जाग नर चेतन, बल सँभार मत करहु विलंब ।
इहां न सुख लवलेश जगतमहिं, निंब विरषमैं लगै न अंब ॥
तातै तूं अंतर विपच्छ हर, कर विलच्छ निज अच्छकदंब ।
गह गुन ज्ञान बैठ चारितरथ, देहु मोष मग सन्मुख बंब ॥१००॥

मालिनी।

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि-
द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे।
मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण
व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ १०१ ॥

कवित्त छन्द।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर; मुनिपति अजितदेव अति आरज।
ताके पद वादीमदभंजन; प्रघटे विजयसेन आचारज ॥
ताके पट्ट भये सोमप्रभ; तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज।
जाके पढ़त सुनत अवधारत; ह्वै सुपुरुष जे पुरुष अनारज ॥१०१॥

विभिन्नप्रतियों में निम्नलिखित संस्कृत श्लोक और मिलते हैं पर इनका पद्यानुवाद नहीं मिलता।

भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीं
तदानीं मा कार्षीविषयविषवृक्षेषु वसतिम्।
यतश्छायाप्येषां प्रथयति महामोहमचिरा-
दयं जन्तुर्यस्मात्पदमपि न गन्तुं प्रभवति ॥ १ ॥

पात्रे धर्म निबंधनं तदितरे श्रेष्ठं दया ख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्द्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमं।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानसंपादकं;
भट्टादौ सुयशस्करं वितरणं नक्वाप्यहो निःफलं ॥२॥(दानअ.)

यदि वहति हि दंडं नग्नमुंडं जटां वा,
यदि वसति गुहायां वृक्षमूले शिलायां ।
यदि पठति पुराणं वेदसिद्धांततत्त्वं,
यदि हृदयमशुद्धं सर्वमेतन्नकिंचित् ॥ ३ ॥ (भावना अ.)

यथा च सीदंति गुरूपदेशाः यथा न स्युःपिशुनप्रवेशाः ।
यथा च धर्म समुपैति वृद्धिं प्रवर्त्तनीयं च तथा भवद्भिः ॥४॥

सोमप्रभाचार्यमभा च यन्न[1] पुंसां तमः पंकमपाकरोति ।
तदप्यमुष्मिन्नुपदेशलेशे निशम्यमाने निशमेति नाशं ॥५॥

भाषाग्रन्थकर्त्ताकी ओरसे नामादि.

दोहा छन्द ।

नामः सूक्तिमुक्तावली; द्वाविंशति अधिकार ।
शत श्लोक परमान सब; इति ग्रन्थविस्तार ॥ १ ॥
"कुँवरपाल बानारसी," मित्र जुगल इकचित्त ।
तिनहिं ग्रन्थ भाषा कियो; बहुविधि छन्द कवित्त ॥ २ ॥
सोलहसै इक्यानवे, ऋतु ग्रीषम वैशाख ।
सोमवार एकादशी; करनछत्र सित पाख ॥ ३ ॥

इति श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता सिन्दूरप्रकरापरपर्याया सूक्तिमुक्तावली भाषाछन्दानुवादसहिता समाप्ता ।

---

१ पाठ भेदः—सोम प्रभाचार्यमभा च लोके वस्तु प्रकाशं कुरुते यथाशु ।
तथायमुच्चैरुपदेशलेशः शुभोत्सवज्ञानगुणांस्तनोति ॥

अथ ज्ञान बावनी

घनाक्षरी।

ओंकार शब्द विशद याके उभयरूप,
एक आतमीक भाव एक पुद्गलको।
शुद्धता स्वभाव लिये उठ्यो राय चिदानंद,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जड़बलको॥
त्रिगुण त्रिकाल तातै व्यय ध्रुव उतपात,
ज्ञाताको सुहात बात नहीं लाग खलको।
"बनारसीदासजूके" हृदय 'ओंकार' वास,
जैसो परकाश शशि पक्षके शुकलको॥ १॥

निरमल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें श्रुतज्ञान परधान करी पायो है।
ताके मूल दोय रूप अक्षर अनक्षरमें,
अनक्षर अग्र पिंड सैनमें बतायो है॥
बावन वरण जाके असंख्यात सन्निपात,
तिनमें नृप 'ओंकार' सज्जनसुहायो है।
'वानारसी दास' अंग द्वादश विचार यामें,
ऐसे 'ओंकार' कंठ पाठ तोहि आयो है॥ २॥

महामंत्र 'गायत्री' के मुख ब्रह्मरूपं मंड्यो,
आतम प्रदेश कोई परम प्रकाश है।

तापर अशोक वृक्ष छत्रध्वज चामर सो,
पवन अगनि जल वसै एक वास है॥
सारीके अकार तामें रुद्र रूप चितवत,
महातम महावृत तामें बहु भास है।
ऐसो 'ओंकार' को अमूल चूल मूलरस,
'बानारसीदासजूके' वदन विलास है॥ ३॥

सिद्धरूप शिवरूप भेष अवभेषरूप,
नररूप न्यायरूप विधिरूप बातमा।
गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गंभीररूप,
भोगरूप भोगीरूप सरस सुहातमा॥
एकरूप आदिरूप अगम अनादिरूप,
असंख्य अनंतरूप जातिरूप जातमा।
'बानारसीदास' द्रव्यपूजा व्यवहाररूप,
शुद्धता स्वभावरूप यहै शुद्ध आतमा॥ ४॥

धुंधवाउ ह्वै भयो शुद्धता विसरि गयो,
परगुण रंग रह्यो पर ही को रुखिया।
निजनिधि निकट विकट भई नैन विन,
क्षणकमें सुखी तामें क्षणकमें दुखिया॥
समकित जल विना त्रषित अनादि काल,
विषय कषायवह्नि अरणमें धुखिया।
'बानारसीदास' जिन रीति विपरीति जाके
मेरे जानें ते तो नर मूढनमें मुखिया।

अनुभवज्ञानतै निदान आनमान छूट्यो,
सरधानवान बान छहों द्रव्य करसें ।
करम उपाधि रोग लोग,जोग-भोग राते,
भोगी त्रिया योगी क़रामातहूको तरसें ॥
दुर्गति विषाद न उछाह सुर भौनवास,
समता सुखिति आतमीक मेघ वरसें ।
'बानारसीदासजूके' वदन रसन रस,
ऐसे रसरसिया ते अरसको परसें ॥ ६ ॥
आवरण समल विमल-भयो ताके-तुलें,
मोह आदि-हने काहु काल गुनकसिया ।
लीन भयो लवलागी मगन विभावत्यागी,
ज्योतिके उदोत होत निज गुन पसिया ॥
'बानारसीदास' निज-आतम प्रकाश भये,
आवें ते न जाहिं एक ऐसे वासवसिया ।
अरस परस दस आदि हीं अनन्त जन्तु,
सुरससवादराचै सोई साँचो रसिया ॥ ७ ॥
इस ही सुरसके,सवादी भये ते तो सुनौ,
तीर्थंकरचक्रवर्ति शैली अध्यातमकी ।
बल वासुदेव प्रति वासुदेव विद्याधर,
चारणमुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भ्रमकी ॥
अट्ठावीस लवधिके विविध सधैया साधु,
सिद्धिगति भये कीन्हीं सुगम अगमकी ।

'बानारसीदास' ऐसो अमीकुंडपिंड पायो,
तहाँलों पहुंच कालक्रमकी न जमकी ॥ ८ ॥
इतर निगोदमें विभाव ताके बहुरूप,
तामें हू स्वभाव ताको एक अंश आवै है।
वहै अंश तेजपुंज बादर अगनि-जैसें,
एकतैं अनेक रस रसना बढावै है ॥
आगें जोर बढ्यो घ्राण चक्षु श्रोत्र नरदेह,
देह देही भिन्न दीखे भिन्नता ही भावै है।
'वानारसीदास' निज ज्ञानको प्रकाश भयो,
शुद्धतामें वास किये सिद्धपद पावै है ॥ ६ ॥
उदै भयो भानु कोऊ पंथी उठ्यो पंथकाज,
कहै नैनतेज थोरो दीप कर चहिये।
कोऊ कोटीध्वज नृप छत्रछांह पुरतज,
ताहि हौंस भई जाय ग्रामवास रहिये ॥
मंगल प्रचंड तज काहू ऐसी इच्छा भई,
एक खर निज असवारी काज चहिये।
'वानारसीदास' जिनवचन प्रकाश सुन,
और वैन सुन्यो चाहै तासों ऐसी कहिये ॥ १० ॥
ऊंचे वंशकी बढ़ाई प्रीतपनों प्रीतिताँई,
गुण गरवाई पिहुलाई घनो फेर है।
वचन विलासको निवास वन सघनाई,
चतुर नागर नर सुरनको घेर है ॥

कीरति सराहको प्रवाह बहै महानदी,
एतो देश उपमा है सबै जग जेर है।
हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेरो ऐसो,
'बानारसीदास' वसुधामें गिरि मेर है ॥ ११ ॥
रीति विपरीति रंग राच्यो परगुण रस,
छायो झूठे भ्रम तातें छूटी निधि घरकी।
तेरे घर ऋद्धि है अनंत आपरंग आये,
नेकु जो गरूरी फेरे हाथ होय हरकी ॥
कायके उपायसेती एती हौंस पूरै भले,
निजक्रियारूठे जेती हौंस पूजै नरकी।
'बानारसीदास' कहै मूढ़को विचार यह,
कोटीध्वज भयो चाहै आस करै परकी ॥ १२ ॥
ऋतु बरसात नदी नाले सर जोरचढे,
बढै नाहिं मरजाद सागरके फैलकी।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
चित्राबेल आइ चढै नाहीं काहू गैलकी ॥
'बानारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संच आवै वीर बुद्धि छैलकी।
कछु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यातमशैलकी ॥ १३ ॥
लवरूपातीत लागी पुण्यपाप भ्रांति भागी,
सहज स्वभाव मोहसेनाबल भेदकी।

ज्ञानकी लबधि पाई आतमलबधि आई,
तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥
राहुके विमान बढ़ें कला प्रगटत पूर,
होत जगाजोत जैसे पूनमके चंदकी।
'बानारसीदास' ऐसे आठ कर्म भ्रमभेद,
सकति संभाल देखी राजा चिदानंदकी ॥ १४ ॥

लिखतपढ़त ठाम ठाम लोक लक्षकोटि,
ऐसो पाठ पढ़े कछू ज्ञान हू न बढ़िये।
मिथ्यामती पचि पचि शास्त्रके समूह पढ़े,
बंधीकलवाजे पशुचामढोल मढिये ॥
दीपक संजोय दीनो चक्षुहीन ताके कर,
विकट पहार वापैं कबहूं न चढ़िये।
'बानारसीदास' सो तो ज्ञानके प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़ै कछू लख्यो है सो पढ़िये ॥१५॥

एक मृतपिण्ड जैसे जलके सयोग छते,
भाजन विशेष कोट छणकमें खेद है।
तैसें कर्मनीरचिदानन्दकी प्रणति दीखै,
नरनारी नपुंसक त्रिविध सुवेद है॥
'बानारसीदास' अब वाको धूप याको तप,
छूटत संयोग ये उपाधिनको छेद है।
पुग्गलके परचै विशेष जीव भेद भये,
पुग्गल प्रसंग विना आतम अभेद है ॥ १६ ॥

ये ही ज्ञान संवद सुनत सुर ताहि सुन,
षटरस स्वाद मानै तू तो ताहि मान रे।
पिंड विरह्मंडकी खबर खोजै ताहि खोज,
परगुण निज गुण जानै ताहि जान रे॥
विषय कषायके विलास मंडै ताहि छंड,
अमल अखंड ऋद्धि आनैं ताहि आन रे।
'बानारसीदास' ज्ञाता होय सोई जानै यह,
मेरे मीत ऐसी रीत चित्तसुधि ठान रे॥ १७॥

उद्यम करत नर स्वारथके काज सब,
स्वारथके उद्यमको ह्वै रह्यो बहर सो।
स्वारथको भजै निरस्वारथको तज रह्यो,
शहरको वन जानै वनको शहर सो॥
स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
स्वारथ पिछाने विन स्वारथ जहर सो।
'बानारसीदास' ऐसे स्वारथके रंगराचे,
लोकनके स्वारथको लागत कहर सो॥ १८॥

उलट पलट नट खेलत मिलत लोक,
याके उलटत भव एक तान ह्वै रह्यो।
अज हूं न ठाम आवै विकथा श्रवण भावै,
महामोह निद्रामें अनादि काल स्वैरह्यो॥
'बानारसीदास' जागे जागै तासों वनि आवै,
जिनवर उकति अमृत रश च्वैरह्यो।

उलटि जो खेलै तो तो ख्याल सो उठाय धरै;
उलटिकें खेले विन 'खोटे ख्याल ह्वै' रह्यो ॥ १६ ॥
कौन काज मुगध करत बध दीनपशु;
जागी ना अगमज्योति कैसो जज्ञ करि है।
कौन काज सरिता समुद्र सरजल डोहै,
आतम अमल डोह्यो अजहूं न डरि है ॥
काहे परिणाम संकलेश रूप करै जीव!
पुण्यपाप भेद किये कहुं न उधरि है।
'बानारसीदास' जिन उकति अमृत रस,
सोई ज्ञान सुने तू अनंत भव तरि है ॥ २० ॥
खेलत अनन्तकाल भये पै न खेद पावै,
तीन सौ तेताल राजू मापकी तलकमें।
केई स्वांग धर खेले वरष असंख्य कोटि
केई स्वांग फेर लावै पलक पलकमें ॥
खेलें जेते जन्तु तातें खेलने अनन्त गुणें,
'बानारसीदास' जानै ज्योतिकी झलकमें।
खेले तै बहुत ख्याल देखे तै अलप जन्तु;
देखे ते भी खेल बैठे 'ख्याल है खलकमें' ॥२१॥
गुरुमुख 'तुबक' सुबक भरे श्रुत सोर,
कालकी लबधि 'कलचंपी' दरम्यानकी।
'जामकी' अगमबुद्धि जोग उपजोग शुद्धि,
'रंजक' अरथ 'ज्वाला' लागी शुभ ध्यानकी ॥

इत 'ज्ञातादल' उत 'मोहसेना' आई बन,
'बानारसीदास' जू 'कुमक' लीजो न्यानकी।
जीवै न अवश्य जाके बन्दूक की 'गोली' लागै,
जागै न मिथ्यात जोपै 'गोली' लागै 'ज्ञानकी'॥२२॥

घटमें विघट घाट उलट , ऊरधवाट,
परगुण साधें ते अनन्त काल तंथको।
'सुषमना' आदि 'इला पिंगला' की सौंज भई,
षटचक्रवेधी गए जीत्यो मनमथको॥
सुलट्यो है कमल 'बनारसी' विशेष ताको,
सुनिवेकी इच्छा भई जिनमत ग्रन्थको।
ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साधै,
जोगनिधि साधै तो सिधावै सिद्धपंथको॥ २३॥

नीच मतिहीन कहै सो तो न व्है केवलीपै,
कहै कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको।
धियागारी धरें धिया सारसुत ऐसी धरी,
मेधाके मिलापसों मथन निज चितको॥
मूरख कहैं ते साधें परम अवधिवार,
तहां न विचार कछु हित अनहितको।
'बानारसीदास' तोसो निज ज्ञान गेह आये,
लोगनकी गारी सो सिंगार समकितको॥ २४॥

चंचलता बाला वैस भौंरी दै दै भूमि फिरै,
घर तरु भूमि देखै घूमत भरमतें।

यों ही पर योगपरणतिसेती परबंध,
औदयिक भाव मूढ़ पावे ना मरमतें ॥
निजकृत मानै तातें घटनि विशेष मानै,
बढ़े परजाय याही कठिन करमतें ।
'बानारसीदास' ऐसे विकल विभाव छूटें,
बुद्धि विसराम पावै स्वभाव धरमतें ॥ २५ ॥

छत्रधार बैठो घने लोगनकी भीरभार,
दीखत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है ।
सेना चारि साजिके बिरानें देश दोही फेरी,
फेरसार करे मानो 'चौपर' पसारी है ॥
कहत 'बनारसी' बजाय धौंसा बारवार,
रागरस राच्यो दिन चारहीकी बारी है ।
खुल्यो ना खजानो न खजानचीको खोजपायो,
राज खसि जायगो खजाने विन ख्वारी है ॥२६॥

जागो राय चेतन सहज दल जुरि आये,
मुरे कर्मरिपुभाव मनमें उमाहवी ।
सरहद भई याकी लोकालोक परिमाण,
इन्द्रचन्द्र चितवत चोपकर चाहवी ॥
'बानारसीदास' ज्ञाता ज्ञान सेना बनि आई,
आदि छतें अन्त विन ऐसी ही निबाहबी ।
खजानची शुभध्यान ज्ञानको खजानो पूरो,
सूरो आप साहिब सुथिर ऐसी साहिबी ॥ २७ ॥

'झाग' उठें वामें यामें 'क्रोधफेन' फैलि रहे,
'त्रिवलतरंगरंग' दूहूंनमें आवना।
वामें 'तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह' यामें,
वामें 'मलपंक' याहि 'वंधद्रोह' भावना॥
'वानारसीदास' वामें 'आकृति अनेक' उठें,
यहां 'कुलकोड' योनि जाति दोष लावना।
वह्यो जात 'जल' तामें येते 'कविभाव' उठें,
आतमा वहिर तामें कहाँते स्वभावना॥ २८॥

निजकाज सवहीको अध्यातम शैली मांझ,
मूढ क्यों न खोज देखै खोज औरवानमें।
सदा यह लोकरीति सुनी है 'वनारसीजू'
वचनप्रशाद नैकु ज्ञानीनके कानमें॥
चेरी जैसें मलिमलि धोवत विराने पांव,
परमनरंजिवेको सांझ औ विहानमें।
निजपांव क्यो न धोवै? कोई सखी ऐसो कहै,
मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें॥ २९॥

टेककरि मूरख विरानें घर टिक रह्यो,
जानै मेरो यही घर मैं भी याही घरको।
घर परमारथ न जानै तातैं भ्रमघेरो,
ठौर विना और ठौर अधर पधरको॥
पंचको भखायो कहै परपंच वंचद्रोह,
संग्रह समूह कियो सो तो पिंड परको।

'बानारसीदास' ज्ञातावृन्दमें विचार देख्यो,
परावर्त्त पूरणी जनम ऐसे नरको ॥ ३० ॥

ठांव मृगमद नाभि पुदगलगुन,
विसतर्यो पौनतें विशेष ढूंढै वनमें ।
साहिब के काज मूढ़ अटत अनेक ठौर,
तनको जो भिन्न मानै तो तो तेरे तनमें ॥
कंठमाहिं मणि कोऊ मूरख विसरि गयो,
सो तो उपखानों सांचो भयो दीन जनमें ।
'बानारसीदास' जिहँ काजको जगत फिरै,
सो तो काज सरै तेरे एक ही वचनमें ॥ ३१ ॥

भूल्यो तू निगोद कोऊ काल पाय डॉकि आयो,
प्रत्येक शरीर पंच थावरमें तें धर्यो ।
पुनि विकलिंदी इंदी पंच परकार चार,
नरक तिर्यंच देव, पुनि पुनि संचर्‌यो ॥
'बानारसीदास' अब नरभव कर्म भूमि,
गंठिभेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै धर्‌यो ।
चेतरे चतुर नर अज हूं तू क्यों न चेतै ?
इस अवतार आयो एते घाट उतर्‌यो ॥ ३२ ॥

ढूंढै लौण सागरमें नेक हू न ढील करै,
क्षारजल बसै वाके क्षारजल पै न्हीं ।
सीतवदासीताहरिकान्तारक्ताश्रोतस्वाद,
स्वादी होय सोई स्वादै कोई काहू दै नहीं ॥

सुभरि विभावसिंधु समता स्वभावश्रोत,
'वानारसी' लाभै ताको भ्रमनको भै नहीं ।
संगी मच्छ सारिखो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
राख्यो सोई जानै भैया कहवेको है नहीं ॥३३॥

नैननतैं अगम अगम याही वैननते,
उलट पलट वहै कालकूट कहरी ।
मूल विन पाये मूढ़ कैसें जोग साधि आवैं,
सहज समाधिकी अगम गति गहरी ॥
अध्यातम सुन्यो तो पै सरधान ह्वै न आवै,
तौ तौ भैया तैं तो वडी राजनीति चहरी ।
'बानारसीदास' ज्ञाता जापै सधै सोई जाने,
उदधि उधानतें अधिक मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व निजकाज कह्यो सत्त्व परगुण गह्यो,
मनकी लहर मानों डसें नाग कारेसे ।
छिनकमें तपी छिन जपी ह्वै के जापजपै,
छिनकमें भोगी छिन जोग परजारेसे ॥
'वानारसीदास' एतो पूर्वकृत बंध ताके,
औदयिक भाव तेई आपो कर धारेसे ।
जब लग मत्त तौलों तत्त्वकी पहुंच नाहीं,
तत्त्व पायें मूढमती लागें मतवारेसे ॥ ३५ ॥

थिर थंभ उपल विपुल ज्योति सरतीर,
सत्ता आये आपनी न कोऊ काके दलको ।

भासै प्रतिबिम्ब अम्बु वायुसों अनेक फैन,
धूजतो सो दीखै पै न धूजै थंभ थलको ॥
जाकी दृष्टि पुग्गलसों चेतन न भिन्न चितै,
आचरण देखे सरधान न विमल को।
'बानारसीदास' ज्ञान आतम सुथिर गुण,
डोलै परजायसो विकार कर्मजलको ॥ ३६ ॥

द्रव्यथकी दोउनकी सरहद देहमात्र,
भावथकी लोकपरिमाण वाकी इधिना।
भाव सरहद याकी अलोकतें अधिकाई,
ये तो शुभ काजकारी वातें कछू सिधि ना ॥
याके तो अभेद ऋद्धि अमल अखंड पूर,
वाके सेना परदल कछू निज रिधि ना।
'बानारसीदास' दोउ मींढि देखी दुनियांमें,
एक दिसि तेरी विधि एक दिसि विधिना ॥३७॥

धर्मदेव नरको वचन जैसो गिरिराज,
मिथ्याती वचन शुद्धारथको पटंतरो।
पारस पाषाण जैसें जाति एक जेतो भेद,
मूरख दरश जैसें दरश महंतरो ॥
'बानारसीदास' कंकसार अन्यसार जैसो,
जनमको द्यौस जैसो द्यौस मरणांतरो।
अध्यातम शैली अन्य शैलीको विचार तैसो,
ज्ञाताकी सुदृष्टिमाहिं लागै एतो अंतरो ॥ ३८ ॥

नरभव पाय पाय बहु भूमि धाय धाय,
पर गुण गाय गाय बहु देह धारी है।
नरभव पीछें देह नरक अनेक भव,
फिर नर देव नर असंख्यात वारी हैं॥
एक देवभव पीछें तिर्यंच अनंत भव,
'बानारसी' संसारनिवास दुःखकारी है।
ज्ञायक सुमतिपाय मोह सेना बिछुराय,
अब चिदानंदराय शकति सँभारी है॥ ३९॥
पामर बरण 'शूद्र' वास तब देह बुद्धि,
अशुभको काज ताहि तातैं बडी लाज है।
वैश्यको विचार वाके कछू करतूति फेर,
'वैश्य' वास बसै तोलों नाहिं जोगराज है॥
'क्षत्री' शुद्ध परचंड जैतवार काज जाके,
'बानारसीदास' ब्रह्म अगम अगाज है।
जैसे वास बसै लोय तामें तैसी बुद्धि होय,
'जैसी बुद्धि तैसी क्रिया क्रिया तैसो काज है॥४०॥
फटिक पाषाण ताहि मोतीकर मानै कोऊ,
घुंघची रकत कहा रतन समान है।
हंस बक सेत इहां सेतको न हेत कछू,
रीरी पीरीं भई कहा कंचनके बान है॥
भेष भगवानके समान कोऊ आन भयो,
मुद्राको मंडान कहा मोक्षको सुथान है।

'बानारसीदास' ज्ञाता ज्ञानमें विचार देखो,

काय जोग कैसो होउ गुण परधान है ॥ ४१ ॥

वेदपाठवाले ब्रह्म कहैं पै विचार विना;

शिव कोई भिन्न जान 'शैव' गुणगावहीं ।

'जैनी' पर जतन जतन निजभिन्न जान,

'बानारसी' कहै 'चारवाक' धुंधधावहीं ॥

'बौद्ध' कहै बुद्ध रूप काहू एक देशवसै,

'न्यायके करनहार' ऊरध बतावहीं ।

छहों दरशनमाहिं छतो आहि, छिपि रह्यो,

छूट्यो न मिथ्यात तातैं प्रगट न पावही ॥ ४२ ॥

भेषधर कोटिक नट्यो है लखचौरासी में,

विना गुरुज्ञान चरतै न चिवंसावमें ।

गुरु भगवान तूही भगवानभ्रान्ति छूटै,

भ्रान्तिसे सुगुरुभाषै जैसें खीर तावमें ॥

'बानारसीदास' ज्ञाता भगवानभेद पायो,

भयो है उछाह तेरे वचन कहावमें ।

भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,

भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ४३ ॥

मोक्ष चलिवेको पंथ भूले पंथ पथिक ज्यों,

पंथबलहीन ताहि 'सुखरथ' सारसी ।

सहजसमाधि जोग साधिवेको 'रंगभूमि'

परम अगम पद पढिवेको 'पारसी' ॥

भवसिन्धु तारिवेको शबद धरै है 'पोत'
ज्ञानघाट पाये 'श्रुतलंगर' लैभारसी।
'समकित नैननिको याके बैन 'अंजन' से,
आतमा निहारिवेको आरसी वनारसी' ॥ ४४ ।

जिनवाणी 'दुग्ध' माहिं 'विजया' सुमतिडार,
निजस्वाद 'कंदवृन्द' चहलपहलमें ।
विवेक विचार उपचार ए 'कसूंभा' कीन्हों,
'मिथ्यासोफी' मिटि गये ज्ञानकी गहलमें ॥
'शीरनी' शुकलध्यान,अनहद 'नाद' तान,
'गान' गुणमान करै सुजस सहलमें ।
'बानारसीदास' मध्यनायक सभासमूह,
अध्यातमशैली चली मोक्षके महलमें ॥ ४५ ॥

रसातल तलैं पच गोलक अनन्त जंतु;
तामें दोऊ राशि अन्तरहित स्वरूप है ।
कटुक मधुर जौलों अगानित भिन्नताई;
चिक्कणताभाव एक जैसें तेलरूप है ॥
जैसें कोऊ जात अंध चौइन्द्री न कहियत,
द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप है ।
'बानारसीदास' प्रभु वीर जिन ऐसो कह्यो,
आतम अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप है ॥ ४६ ॥

लक्ष कोटि जोरिजोरि कंचन अम्बार कियो,
करता मैं याको ये तो करै मेरी शोभ को ।

धामधन भरो मेरे और तो न काम कछू,
सुख विसराम सो न पावें कहूं थोभको ॥
ऐसो बलवंत देख मोह नृप खुशी भयो,
सैनापति थाप्यो जैसे अहंभार मोभको ।
'बानारसीदास' ज्ञाता ज्ञानमें विचार देख्यो,
लोगनको लोभ लाग्यो लागे लोग लोभको ॥४७॥
बावन वरण ये ही पढ़त वरण चारि,
काहू पढ़ें ज्ञान बढै काहू दुख द्वंदजू ।
वरण भंडार पंच वरण रतनसार,
और ही भंडार भाववरण सुछंदजू ॥
वरणतें भिन्नता सुवरणमें प्रतिभासै,
सुगुण सुनत ताहि होत है अनंद जू ।
'बानारसीदास' जिनवाणी वरणन कियो,
तेरी वाणी वरणाव करै बड़े वृन्द जू ॥ ४८ ॥
शकबंधी सांचो 'शिरीमाल जिनदास' सुन्यो;
ताके वंश 'मूलदास' विरध बढ़ायो है ।
ताके वंश छितिमें प्रगट भयो खड्गसेन,
'बानारसीदास' ताके अवतार आयो है ॥
बीहोलिया गोत गर वतन उद्योत भयो,
'आगरेनगर' ताहि भेंटे सुखपायो है ।
'बानारसी' 'बानारसी' खलक बखान करै,
ताको वंश नाम ठाम गाम गुण गायो है ॥ ४९ ॥
खुशी ह्वै के मन्दिर 'कपूरचन्द' साहु बैठे,

बैठे 'कौंरपाल' सभा जुरी मनभावनी।
'बानारसीदास' जूके वचनकी बात चली,
याकी कथा ऐसी ज्ञाताज्ञानमनलावनी ॥
गुणवंत पुरुष के गुण कीरतन कीजे,
'पीतांबर' प्रीति करी सज्जन सुहावनी।
वही अधिकार आयो 'ऊंघते विछोना पायो'
हुकम प्रसादतें भयी है 'ज्ञानबावनी' ॥ ५० ।
सोलह सो छियासीये संवत कुंवारमास,
पक्ष उजियारे चन्द्र चढ़नेको चाव है।
विजैदशी दिन आयो शुद्ध परकाश पायो,
उतरा आषाढ़ उडुगन यहै दाव है।
'बानारसीदास' गुणयोग है शुकलवाना,
पौरिषप्रधान गिरी करण कहाव है।
एक तो अरथ शुभ महूरत वरणाव,
दूसरे अरथ यामें दूजो बरणाव है ॥ ५१ ॥
हेतवंत जेते ताको सहज उदारचित्त,
आगे कहों एतो वरदान मोहि दीजियो।
उत्तम पुरुष 'शिरीबानारसीदास' यश,
पन्नगस्वभाव एक ध्यानसों सुनीजियो ॥
पवनस्वभाव विसतार कीज्यो देशदेश,
भ्रमर स्वभाव निज स्वाद रस पीजियो।
बावन कवित्त ये तो मेरी मतिमान भये,
हंसके स्वभाव ज्ञाता गुण गहलीजियो ॥ ५२ ॥

इति श्रीबानारसी नामाङ्कित ज्ञानबावनी।

अथ वेदनिर्णयपंचासिका.

चूडामणि छन्द ।

जगतविलोचन जगतहित, जगतारण जग जाना ।
बन्दहु जगचूडामणी, जगनायक परधाना ॥
नमहुं ऋषभस्वामी प्रमुख, जिनचौवीस महन्ता ।
गुरुचरण चितराख मुख, कहूं वेदविरतन्ता ॥ १ ॥

मनहरण ((खडीबोली) ·

जे बलीकथितवेद अन्तर गुपत भये,
जिनके शवदमें अमृतरस चुवा है ।
अब ऋगुवेद यजुर्वेद शाम अथर्वण,
इनहीं का परभाव जगत में हुआ है ॥
कहत 'बनारसी' तथापि मैं कहूँगा कछु,
सही समझेंगे जिनका मिथ्यात मुवा है ।
मतवारो मूरख न मानैं उपदेश जैसे,
उलुवा न जाने किसीओर भानु उवा है ॥ २ ॥

दोहा ।

कहहुं वेदपंचासिका, जिनवानी परमान ।
नर अजान जानैं नहीं, जो जाने सो जान ॥ ३ ॥
ब्रह्मानाम 'युगादिजिन,' रूप चतुर्मुख धार ।
समवसरण मंडानमें 'वेद' वखानैं चार ॥ ४ ॥

घनाक्षरी ।

प्रथम पुनीत 'प्रथमानुयोगवेद' जामें,
त्रेसठशलाका महापुरुषों की कथा है ।
दूजो वेद 'करणानुयोग' जाके गरभ में,
करनी अनादि लोकालोक थिति जथा है ।।
'चरणानुयोग' वेद तीसरो प्रगट जामें,
मोखपंथकारण आचार सिंधु मथा है ।
चौथोवेद 'दरव्यानुयोग' जामें दरवके,
षटभेद करम उछेद सरवथा है ।। ५ ।।

प्रथमवेद यथा:—

षट्पद ।

'तीर्थंकर' चौवीस, 'काम' चौवीस मनुजतन ।
'जिनमाता जिनपिता, सकल व्यालीसआठ गन ।।
'चक्रवर्ति' द्वादश प्रमान, एकादश 'शंकर' ।
नव 'प्रतिहर' नव 'वासुदेव,' नव 'राम' शुभंकर ।।
'कुलकर' महन्त चवदह पुरुष, नव 'नारद' इत्यादि नर ।
इनको चरित्र अरु गुणकथन, 'प्रथमवेद' यह भेद धर ।।६।।

द्वितीयवेद यथा:—

अगम अनंत अलोक, अकृत अनिमित अखंड सम ।
असंख्यातपरदेश, पुरुषआकार लोक नभ ।।
ऊरध स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यभुव ।
दीप असंख्य उदधि, असंख मंडलाकार ध्रुव ।।

तिस मध्य अढ़ाई दीपलग, पंचमेरु सागर जुगम ।
यह मनुजक्षेत्र परिमाण छिति, सुरविद्याधरको सुगम ॥ ७ ॥

मनहरण ।

सोलह सुरग नवग्रीव नव नवोत्तर,
पंच पंचानुत्तर ऊपर सिद्धशिला है ।
ता ऊपर सिद्धक्षेत्र तहां हैं अनन्तसिद्ध,
एकमें अनेक कोऊ काहूसों न मिला है ॥
अधोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
नीचे सात नरकनिवास बहु विला है ।
इत्यादि जगततिथि कही 'दूजेवेद' माहिं,
सोई जीव मानें जिन मिथ्यात उगिला है ॥ ८ ॥

तृतीयवेद यथा:—

मिथ्याकरतूति नाखी सासादन रीति भाखी,
मिश्रगुणथानककी राखी मिश्र करनी ।
सम्यकवचन सार कह्यो नानापरकार,
श्रावकआचार गुन एकादश धरनी ॥
परमादीमुनिकी क्रिया कहीं अनेकरूप,
भारी मुनिराजकी क्रिया प्रमादहरनी ।
चारित्रकरण त्रिधा श्रेणिधारा दुविधा है,
एक दोषमुखी एक मोखमुखी वरनी ॥ १० ॥

चौपाई ।

उपशम क्षिपक यथावत चारित, परकृत अनुमोदनकृतकारित ।
द्विविधि त्रिविधि पर्नविधि आचारा, तेरह विधि सत्रह परकारा ॥११॥

दोहा ।

वरनन संख्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनंत ।
सदाचार गुणकथन यह, 'तृतीयवेद' विरतंत ॥ १२ ॥

'चतुर्थवेद'यथा:—रूपक घनाक्षरी ।

जीव पुद्गल धर्म, अधर्म्म आकाश काल,
येही छहों दरब, जगत के धरनहार ।
एक एक दरबमें, अनंत अनंत गुन,
अनंत अनंत परजायके करनहार ॥
एक एक दरबमें, शकति अनंत बसै,
कोऊ न जनम धरै कोऊन मनहार
निह्चै निवेद कर्मभेद चौथेवेद माहिं,
बखानैं सुगुरु मानै मोहको हरनहार ॥ १३ ॥

चौपाई ।

येही चारवेद जगमाहिं । सर्व ग्रन्थ इनकी परछाहिं ॥
ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद । त्यों त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १४

दोहा ।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद ।
ते किन कीन्हें कब भये, सो सब बरनौं भेद ॥ १५ ॥
युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति बखान ।
"ऋषभदेव ब्रह्मा" कथा, सुनहु भविक धर कान ॥ १६ ॥

"युगलधर्म यथा,"—चौपाई ।

प्रथमहिं "जुगलधर्म" है जैसा । गुरुपरसाद कहहुँ कछु तैसा ॥
जन्महिं जुगलनारिनर दोऊ । भाई बहिन न मानै कोऊ ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुरसे सीरे सोमसे, बहुरानी बहुमित्र ।
होहिं एकसे जुगल सब, कौतूहली विचित्र ॥ १८ ॥

मनहरण ।

सबहीके चित्त अतिसरलस्वभावी नित्त,
सबहीके थिरचित्त कोऊ न सुगुलिया ।
हिये पुण्यरसपोष सहजसंतोष लिये,
गुननके कोष दुखदोषके उगलिया ॥
कोऊ नहि लरै कोऊ काहूको न धन हरै,
कोऊ कबहूँ न करै काहूकी चुगलिया ।
समतासहित संकलेशतारहित सब,
सुखिया सदीव ऐसे जीव हैं जुगलिया ॥ १९ ॥
भूषन नवीन वस्त्र मलहीन सबहीके,
घर घर निकट कलपतरुवाटिका ।
नाहीं रागद्वेषभाव नाहीं बंधको बढाव,
नाहीं रोग ताप न विलोकै कोऊ नाटिका ॥
विविधपरिग्रह सबके घर देखिये पै
काहूके न पोरि परद्वार न कपाटिका ।
अलपअहारी सब मृदुतनधारी सब,
सुन्दरअकारी सब ऐसी परिपाटिका ॥ २० ॥

दोहा ।

घर घर नाटक होहिं नित, घर घर गीत सँगीत ।
कबहुं कोउ न देखिये, वदनपीत भयभीत ॥ २१ ॥

मनहरण ।

जिनके अलप संकलप विकलप दोऊ,
थोरो मुखजलप अलपअहमेवता ।
जिनके न कोऊ अरि दीरघ शरीर धरि,
त्रिपतिकी दशा धरै विपति न वेवता ॥
जिनके विषै वढ़ाव पल्योपमतीन आव,
सबै नर राव कोऊ काहूको न सेवता ।
ऐसे भद्रमानुष जुगल अवतार पाय,
करि करि भोग मरि मरि होंहि देवता ॥ २२ ॥
जिनके जनम माहिं मातपिता मर जाहिं,
व्यापै न वियोग दुख शोक नहिं धरना ।
अपने अँगूठाको अमृतरसपान कर,
जिनको अपनो तन वर्द्धमान करना ॥
अन्तकाल जिनको असातावेदनी न होय,
छींक आये अथवा जँभाई आये मरना ।
जिनको शरीर खिर जाय ज्यों कपूर उडै,
ऐसो जिनवानीमें "जुगलधर्म" बरना ॥ २३ ॥

चौपाई ।

जुगलधर्म जब लेय मरोरा । बाकी काल रहै कछु थोरा ॥
प्रगटहिं तहां चतुर्दशप्रानी । "कुलकर नाम कहावैं ज्ञानी ॥ २४ ॥
सब सुजान सबकी गति नीकी । सब शंका मेटहि सबजीकी ।
होहिं विछिन्न 'कल्पतरु ज्यों ज्यों । 'कुलकर' आगम भाषहिं त्योंत्यों॥

दोहा ।

कह्यो सबनि भरि भरि जनम, हरि हरि भांति कहाव ।
धरि धरि तन मरि मरि गये, करि करि पूरण आव ॥ २६ ॥

इहिविधि चवदह मनु भये, कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ज्ञान संयुक्त सब, मति श्रुति अवधि रसाल ॥ २७ ॥

चौपाई ।

तेरह मनुके नाव जु आने । नाभिराय चौदहें बखाने ॥
मरुदेवी तिनकी वरनारी । शीलवंत सुन्दरि सुकुमारी ॥ २८ ॥

ताके गर्भ भये अवतारी । ऋषभदेवजिन' समकितधारी ।
तीनज्ञान संयुक्त सुहाये । अगणित नाम जगतमें गाये ॥२६॥

ऋषभदेव कथनः—

दोहा ।

"ऋषभदेव" जे जे दशा; धरीं किये जे काम ।
ते ते पदगर्भित भये, प्रगट जगतमें नाम ॥ ३० ॥

जे "ब्रह्माके" नाम सब, जगतमाहिं विख्यात ।
ते गुणसों करतूतिसों, "ऋषभदेव" की बात ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जनमत नाम भयो शुभवेला । "आदिपुरुष" अवतार, अकेला ॥
मातापिता नाम जब राखा । "ऋषभकुमार" जगत सब भाखा ॥३२॥

"नाभि" नाम "राजा" के जाये । "नाभिकमलउत्पन्न" कहाये ।
इन्द्र नरेन्द्र करें जब सेवा । तब कहिये "देवनको देवा" ॥३३॥

जुगलरीति तज नीति उधरता । तातैं कहैं सृष्टिके "करता" ।
असिमसिकृषिवाणिजके दाता । ताकारण "विधि"नाम 'विधाता'॥
क्रियाविशेष रचीं जग जेती । जगत "विरञ्चि" कहैं प्रभु सेती ॥
जुग की आदि प्रजा जब पालें । जब जग नाम "प्रजापति" आलें।३५

दोहा ।

कियो,नृत्य काहू समय, नटी अप्सरा वाम ।
जगत कहै ब्रह्मा रचो, तिय "तिलोत्तमा" नाम ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

गुरुविन गये महामुनि जब हीं । नाम "स्वयंभू" प्रगटो तबहीं ॥
ध्यानारूढ़ परमतप साधैं । "परमइष्ट" कह जगत अराधैं ॥३७॥
"भरतखंडके" प्राणी जेते । प्रजा "भरतराजा" के तेते ।
"भरतनरेश" "ऋषभ" की साखा । तातैं लोक 'पितामह' भाखा३८
केवलज्ञानरूप जब होई । तब "ब्रह्मा" भाषै सब कोई ।
कंचनगढ़गर्भित जग भासै । नाम "हिरण्यगर्भ" परकासै ॥ ३९ ॥

दोहा ।

कमलासनपर बैठिके । देहिं धर्म उपदेश ।
चमर छत्र लख जग कहै । "कमलाशन" लोकेश ॥ ४० ॥

चौपाई ।

आतमभूमि रूप दरसावै । तबहिं "आत्मभू" नाम कहावै ॥
सकलजीवकी रच्छा भाखैं । नाम "सहस्रपातु" जग राखै ॥ ४१ ॥
समवसरनमहिं चौमुखि दीसै । "चतुरानन" कह जगत अशीसै ॥
अक्षरविना "वेद" धुनि भासै । रचना रच "गणधर" परगासै४२।

'चारवेद" कहिये तब सेती। द्वादशांगकी रचना एती॥
जब धुनि सुनि अनंतता गहिये। तब प्रभु "अनंतातमा कहिये॥४३॥
"आदिनाथआदीश्वर" जोई। आदि अन्तविन कहिये सोई॥
करै जगत इनहींकी पूजा। ये ही "ब्रह्म" और नहिं दूजा॥४४॥
जबलों जीव मृषामग दौरै। तबलों जानै "ब्रह्मा" औरै॥
जब "समकित" नैननसों सूझै। "ब्रह्मा ऋषभदेव" तब बूझै॥४५॥

दोहा।

"आदीश्वर ब्रह्मा" भये, किये 'वेद' जिन चार।
नामभेद मतभेदसों, बढ़ी जगतमें रार॥ ४६॥

ब्रह्मलोक कथनः—

चौपाई।

और उक्ति मेरे मन आवै। सांचीबात सबनको भावै॥
"ब्रह्मा ब्रह्मलोक"को बासी। सो वृत्तान्त कहों परकासी॥४७॥

कुंडलिया।

ऊपर सब सुरलोक के, "ब्रह्मलोक" अभिराम।
सो "सरवारथसिद्धि" तसु, पंचानुत्तर" नाम॥
पंचानुत्तर नाम, धाम एका अवतारी।
तहां पूर्वभव वसे, ऋषभजिन समकितधारी॥
"ब्रह्म लोकसों चये, भये "ब्रह्मा" इहि भूपर।
तातें लोक कहान, देव "ब्रह्मा" सब ऊपर॥ ४८॥

चौपाई।

"आदीश्वर" युगादि शिवगामी। तीनलोकजनअंतरजामी॥
ऋषभदेव ब्रह्मा जगसाखी। जिन सब जैनधर्मविधि भाखी॥ ४९॥

ऋषभदेवके अगनितनाऊं । कहों कहां लौं पार न पाऊं ॥
वे अगाध मेरी मति हीनी । ताते कथा समापत कीनी ॥ ५० ॥

षट्पद ।

इहिविधि ब्रह्मा भये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि ।
रूप चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि ॥
तिनके नाम अनंत, ज्ञानगर्भित गुनगूझे ।
मैं तेते वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे ॥
यह "शब्दब्रह्मसागर" अगम, परमब्रह्म गुणजलसहित ।
किमि लहै "बनारसि" पार पद, नर विवेक भुजबलरहित ॥ ५१ ॥

इति वेदनिर्णयपंचासिका

अथ त्रेशठशलाकापुरुषोंकी नामावली

वस्तुछन्द ।

नमो "जिनवर" नमो जिनवरदेव चौवीस ।
नरद्वादश "चक्रधर" नव "मुकुन्द" नव "प्रतिनारायण" ।
नव "हलधर" सकल मिलि, प्रभु त्रेशठ शिवपथपरायण ॥
ए महंत त्रिभुवनमुकुट, परमधरमधनधाम ।
ज्यों ज्यों अनुक्रम अवतरे, त्यों त्यों वरनौं नाम ॥ १ ॥

सोरठा ।

केई तद्भव सिद्ध, निकटभव्य केई पुरुष ।
मृषागांठि उरविद्ध, सुमति शलाकाधर सकल ॥ २ ॥

वस्तुछन्द ।

"ऋषभजिनवर" ऋषभजिनवर "भरतचक्रीश" ।
"श्रीअजित जिनेश" हुव, "सगर" चक्रि "संभवतीर्थंकर" ।
"अभिनंदन सुमति" जिन, "पद्मप्रभ सुपास श्रीशंकर" ॥
"श्रीचन्द्रप्रभु सुविध" जिन, "शीतल" जिन "श्रेयांश ।
"अश्वग्रीव" प्रतिहर भयो, "हलधर विजय" सुवंश ॥ ३ ॥

सोरठा ।

हरि "त्रिपृष्टि" जिन जाय, "वासुपूज्य जिन द्वादशम ।
"तारक" प्रतिहरि वाय हलधर "अचल द्विपृष्टि" हरि ॥ ४ ॥

वस्तुछन्द ।

"विमल" जिनवर विमल जिनवर "मेरु" प्रतिविष्णु ।
वल "धर्म स्वयंभू" हरि, जिन "अनंत मधु" प्रतिदामोदर ।
वल "सुप्रभ" नाम हुव, "पुरुषोत्तम" हरि तासु सोदर ॥
"धर्म" जिनेश "निशुंभ" प्रति, नारायण नरभेस ।
राम "सुदर्शन" नाम हुव, हरि "नरसिंह नरेस ॥ ५ ॥

सोरठा ।

"मघव" नाम चक्रेश, चक्री "सनतकुमार" हुवौ ।
चक्री "शांति" नरेश, भयहु "शांति" जिनु शांतिकर ॥

वस्तुछन्द ।

"कुंथु" चक्री "कुंथु" चक्री, "कुंथु" सर्वज्ञ ।
"अर" सार्वभौम हुव, "अर" जिनेश "प्रह्लाद" प्रति

बलभद्र "सुनंदि" हुव, "पुंडरीक" हरि बंधु तासु घर ॥
सार्वभौम "सुभौम" हुव, 'बलि" प्रतिहरि अवतार ।
"नन्दिमित्र" बलदेव हित, केशव "दत्तकुमार" ॥ ७ ॥

सोरठा ।

"पदम" चक्रि जिन "मल्लि, विजयसेन" षटखंडजित ।
"मुनिसुव्रत" हरि अल्लि, चक्रवर्ति "हरिषेण" हुव ॥ ८ ॥

वस्तुछन्द ।

भयहु "रावण" भयहु रावणनाम प्रतिकृष्ण ।
रघुनन्दन "राम" हुव, वासुदेव "लक्ष्मण" गणिजै ।
"नमि" जिनवर "नेमि" जिन, "जरासंध" प्रतिहरि भणिजै ॥
हलधर "पदम मुरारि" हरि, "ब्रह्मदत्त" चक्रीस ।
पास जिनेसुर "वीर" जिन, नर तीनत्रिवीस ॥ ९ ॥

सोरठा ।

त्रिभुवनमाहिं उदार, त्रेशठ पद उत्कृष्ट जिय ।
भाविभूत उपचार, वन्दै चरण "बनारसी ॥ १० ॥

तीर्थंकर नामावली:—षट्पद ।

ऋषभ अजित संभव जिनंद सुमति धर ।
श्रीपदमप्रभ श्रीसुपास, चन्द्रप्रभ जिनवर ॥
सुविधिनाथ शीतल श्रेयांसप्रभु वासुपूज्य वर ।
विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन कुंथुनाथ अर ॥
प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक, मुनिसुव्रत नमि नेमि नर ।
पारस जिनेश वीरेश पद, नमति "बनारसी" जोर कर ॥११॥

चक्रवर्तिनामः—दोहा ।

भरत सगर मघवा सनत,—कुँवर शांति कुंथेश ।
अर सुभौम पदमारुची, जय हर्षेण ब्रह्मेश ॥ १२ ॥

प्रतिनारायण नामः—दोहा ।

अश्वग्रीव तारक मधू, मेरु निशुंभ प्रह्लाद ।
बलिराजा रावण जरा, सन्ध सुप्रतिहरिवाद ॥ १३ ॥

नारायणनामः—दोहा ।

त्रिपिष द्विपिष्ट स्वयंभु पुरु,-षोत्तम नरसिंहेश ।
पुण्डरीक दत्ताधिपति, लछमण हरिमथुरेश ॥ १४ ॥

बलभद्रनाम—दोहा ।

विजय अचल बल धर्मधर, सुप्रभ सुदर्शन नाम ।
सुनंदि नंदिमित्रेश रघु, नाथपदम नवराम ॥ १५ ॥

इति श्रीत्रेशठशलाकापुरुषोंकी नामावली

अथ मार्गणाविधान लिख्यते

दोहा ।

वन्दहुं देव जुगादिजिन, सुमरि सुगुरु मुखभाख ।
चवदह मारगणा कहहुं, वरणहुं वासठ साख ॥ १ ॥

चौपाई ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
संजम भव्य अहार कषाय । दरशन ज्ञान जोग गति
१० ११ १२ १३ १४
लेश्या समकित सैनी वेद । इन्द्रिय सहितचतुर्दशभेद

ए चौदह मारगणा सार। इनके वासठ भेद उदार ॥
वासठ संसारी जिय भाव। इनहिं उलंघि होय शिवराव ॥ ३ ॥
संजम सात भव्य द्वै भाय। द्विविधि अहारी चार कषाय।
दर्शन चार आठविधि ज्ञान। जोग तीन गति चारविधान ॥ ४ ॥
षट काया लेश्या षट होय। षट समकित सैनीविधि दोय ॥
वेद तीनविधि इन्द्रिय पंच। सकल ठीक गति वासठ संच ॥ ५ ॥
इनके नाम भेद विस्तार। वरणहुं जिनवानी अनुसार ।
वासठरूप स्वांग धर जीव। करै नृत्य जगमाहिं सदीव ॥ ६ ॥
प्रथम असंजम रूप विशेष। देशसंजमी दूजो भेष ॥
तीजो सामायिक सुखधाम। चौथा छेदउथापन नाम ॥ ७ ॥
पंचम पद परिहारि विशुद्धि। सूक्ष्म सांपराय षट बुद्धि ॥
जथाख्यात चारित सातमा। सातों स्वांग धरै आतमा ॥ ८ ॥
भव्य अभव्य स्वांग धर दुधा। करै जीव जग नाटक मुधा ॥
अनहारक आहारी होय। नाचें जीव स्वांग धर दोय ॥ ९ ॥
कवहूं क्रोध अगनि लहलहै। कवहूं अष्ट महामद गहै ॥
कवहूं मायामयी सरूप। कवहूं मगन लोभ रसकूप ॥ १० ॥
चार कषाय चतुर्विध भेष। धर जिय नाटक करै विशेष ॥
कहूं चक्षुदर्शनसों लखै। अचक्षुदर्शनसों चखै ॥ ११ ॥
कहूं अवधि दर्शन सु प्रयुंज। कहूं सुकेवलदरशन पुंज ॥
धर दर्शन मारगणा चारि। नाटक नटै जीव संसारि ॥ १२ ॥
कुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन। कुश्रुति कुआगम में परवीन ॥
धरै विभंगा अवधि अजान। सुमति ज्ञान समकित परवान ॥ १३ ॥

सुश्रुतिज्ञान परमागम सुणै। अवधि ज्ञान परमारथ मुणै ॥
मनपर्जय जानहिं मनभेद। केवलज्ञान प्रगट सब वेद ॥ १४ ॥
एही आठ ज्ञानके अंग। नचै जीव इनरूप रसंग ॥
मनोजोगमय होय कदाचि। बोलै वचन जोगसों राचि ॥ १५ ॥
कायजोगमय मगन स्वकीय। नाचै त्रविधि जोग धर जीय ॥
सुरगति पाय करै सुखभोग। समसुखदुख नरगति संजोग ॥१६॥
बहुदुख अल्पसुखी तिरजंच। नरक महादुख है सुख रंचं ॥
चहुंगति जम्मन मरण कलेस। नटै जीव नानारसभेस ॥१७॥
पृथिवी काय देह जिय धरै। अपकायिकमय ह्वै अवतरै ॥
अगनिकायमहिं तपत स्वभाय। वायुकायमहिं कहिये वाय ॥१८॥
वनसपती रूपी दुखमूल। लहि त्रसकाय धरै तन थूल ॥
षटकाया षटविधि अवतार। धरि धरि मरै अनन्ती बार ॥ १९ ॥
धरै कृष्णलेश्या परिणाम। नीललेश्यमय आतमराम ॥
फिर धारै लेश्या कापोत। सहज पीतलेश्यामय होत ॥ २० ॥
चेतन पद्मलेश्य परिवान। करै शुकललेश्या रसपान ॥
इहिविधि षट लेश्यापद पाय। जगवासी शुशुभ अभ कमाय ॥२१॥
धर मिथ्यात्व झूठ सरदहै। वमि समकित सासादन गहै ॥
सत्य असत्य मिश्र समकाल। सीधे समकित छायक चाल ॥२२॥
उपसम बोध धरै बहुबार। वेदै वेदकरूप विचार ॥
धर षट समकित स्वांग विधान। करै नृत्य जिय जान अजान॥२३॥
सैनीरूप असैनीरूप। दुविधिस्वांग जिय धरै अनूप ॥
पुरुपवेद तृण अगनि उछाह। त्रियवेदी कारीसादाह ॥ २४ ॥
वनदवदाह नपुंसकवेद। नटै जीव धर रूप त्रिभेद ॥

थावरमाहिं इकेन्द्री होय। त्रस संखादिक इन्द्रिय दोय॥ २५॥
पिपीलिकादिक इन्द्री तीनि। चौरिन्द्रिय जिय भ्रमरादीनि॥
पंचेन्द्री देवादिक देह। सव वासठि मारगणा एह॥ २६॥
जावत जिय मारगणारूप। तावत्काल वसै भवकूप॥
जव मारगणा मूल उछेद। तव शिव आपै आप अभेद॥२७॥

दोहा।

ये वासठ विधि जीवके, तनसम्वन्धी भाव।
तज तनवुद्धि "वनारसी" कीजे मोक्ष उपाव॥ २८॥

इति वासठ मार्गणा विधान

अथ कर्मप्रकृतिविधान

वस्तुछन्द।

परमशंकर परमशंकर, परमभगवान्
परब्रह्म अनादि शिव, अज अनंत गणपति विनायक।
परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेशदायक॥
इत्यादिक वहु नाम धर जगतवंद्य जिनराज।
जिनके चरण "वनारसी" वंदै निजहितकाज॥ १॥

दोहा।

नमों केवली के वचन, नमों आतमाराम।
कहौं कर्मकी प्रकृति सव, भिन्न भिन्न पद नाम॥ २॥

चौपाई (१५ मात्रा)

एकहि करम आठविधि दीस। प्रकृति एकसौ अड़तालीस॥
तिनके नाम भेद विस्तार। वरणहुं जिनवाणी अनुसार॥ ३॥
प्रथमकर्म "ज्ञानावरणीय"। जिन सब जीव अज्ञानो कीय॥
द्वितिय "दर्शनावरण" पहार। जाकी ओट अलख करतार॥ ४॥
तीजा कर्म "वेदनी" जान। तासों निराबाधि गुणहान॥
चौथा "महामोह" जिन भनै। जो समकित अरु चारित हनै॥५॥
पंचम "आवकरम" परधान। हनै शुद्ध अवगाहप्रमान।
छट्ठा "नामकर्म" विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत॥ ६॥
"गोत्र" कर्म सातमों बखान। जासों ऊंच नीच कुल मान॥
अष्टम "अन्तराय" विख्यात। करै अनन्तशकतिको घात॥ ७॥

दोहा।

एही आठों करममल, इनमें गर्भित जीव।
इनहिं त्याग निर्म्मल भयो, सो शिवरूप सदीव॥ ८॥

चौपाई।

कहो कर्मतरु डाल सरीस। प्रकृति एकसो अड़तालीस॥
"मतिज्ञानावरणी" जो कर्म। सो आवरि राखै मतिधर्म॥ ९॥
"श्रुतिज्ञानावरणी" बल जहां। शुभश्रुतज्ञान फुरै नहिं तहां॥
"अवधिज्ञान आवरण" उदोत। जियको अवधिज्ञान नहिं होत॥१०॥
"मनपरजय आवरण" प्रमान। नहिं उपजै मनपर्जय ज्ञान॥
"केवलज्ञानावरणी" कूप। तामहिं गर्भित केवलरूप॥ ११॥

वरणी ज्ञानावरणकी, प्रकृति पंचपरकार।
अब दर्शन आवरण तरु, कहहुं तासु नव डार॥ १२॥

"चक्षुदर्शनावरणी" बंध । जो जिय करै होहि सो अंध ।
"अचखुदर्शनावरण" वखेव । शवद फरस रस गंध न वेव ॥ १३ ॥
"अवधिदर्शनावरण" उदोत । विलल अवधिदर्शन नहिं होत ॥
"केवलदर्शआवरण" जहां । केवलदर्शन होय न तहां ॥ १४ ॥
"त्यानगृद्धि" निद्रावश परै । सो प्राणी विशेष वलधरै ॥
उठि उठि चलै कहै कछु वात । करै प्रचंड कर्मउतपात ॥ १५ ॥
"निद्रानिद्रा उदय स्वकीय । पलक उघाड़ सकै नहिं जीव ॥
"प्रचलाप्रचला" जावतकाल । चंचल अंग वहै मुख लाल ॥ १६ ॥
"निद्रा" उदय जीव दुख भरै । उठ चालै वैठे गिरि परै ॥
रहै आंख "प्रचलासों" घुली । आधी मुद्रित आधी खुली ॥ १७ ॥
सोवतमाहिं सुरति कछु रहै । वारवार "लघु निद्रा" गहै ॥
इति "दर्शनावरणि" नवधार । कहों वेदनी द्वयपरकार ॥ १८ ॥

दोहा ।

"साता" करम उदोतसों जीव विषयसुख वेद ।
करम "असाताके" उदय, जिय वेदै दुख खेद ॥ १९ ॥

चौपाई ।

अब मोहनी दुविधि गुरुभनै । इक दरशन इक चारित हनै ॥
दर्शनमोह तीन विधि दीस । चारितमोह विधान पचीस ॥२०॥
प्रथम मिथ्यातमोह की दौर । जिय सरदहै और की और ॥
दूजी मिश्रमोह की चाल । सत्य असत्य गहै समकाल ॥ २१ ॥
समकितमोह तीसरी दशा । करै मलिन समकित की रसा ॥
अब कषाय सोलहविधि कहों । नोकषाय नवविधि सरदहों ॥२२॥

प्रथमकषाय कहावै कोप। जाके उदय छिमागुण लोप।
द्वितिकषाय मान परचंड। विनय विनाश करै शतखंड ॥२३॥
तीजी माया रूप कषाय। जाके उदय सरलता जाय ॥
लोभ कषाय चतुर्थमभेद। जासु उदय संतोष उछेद ॥ २४ ॥

दोहा।

ये ही चारकषाय मल, अनुक्रम सूक्षम थूल।
चारों कीजे चौगुने, चन्द्रकला समतूल ॥ २५ ॥

अनन्तानुबधीय कषाय। जाके उदय न समकित थाय ॥
अप्रत्याख्यानिया उदोत। पंचमगुणथानक नहिं होत ॥२६॥
प्रत्याख्यान कहावै सोय। जहां सर्वसंयम नहिं होय ॥
सो संज्वलन नाम गुरु भनै। यथाख्यातचारित जो हनै ॥२७॥
क्रोध मान माया अरु लोभ। चारों चारचारविधि शोभ ॥
ए कषाय सोलह दुखधाम। अब नव नोकषाय के नाम ॥ २८ ॥
रागद्वेषकी हांसी जोय। हास्य कषाय कहावै सोय ॥
सुखमें मगन होय जिय जहां। रति कषाय रस वरसै तहां ॥२६॥
जहां जीवको कछु न सुहाय। तहां मानिये अरति कषाय ॥
थरहर कंपै आतमराम। जामहिं सो कषाय भय नाम ॥३०॥

रुदन विलाप वियोग दुख, जहां होय सो सोग।
जहां ग्लानि मन ऊपजै, सो दुर्गछा रोग ॥ ३१ ॥

नगर दाह सम परगट दीस। गुप्त पजावा अग्नि सरीस ॥
महा कलुषता धरैं सदीव। वेद नपुंसकधारी जीव ॥ ३२ ॥

अब बरनों तियवेदकी, रचना सुनि गुरु भाष ।
कारीसाकीसी अगनि, गर्भित छल अभिलाष ॥ ३३ ॥

ज्यों कारीसाकी अगनि, धुआँ न परगट होय ।
सुलग सुलग अन्तर दहै, रहै निरन्तर सोय ॥ ३४ ॥

त्यों वनितावेदी पुरुष, बोले मीठे बोल ।
बाहिर सब जग वश करै, भीतर कपटकलोल ॥ ३५ ॥

कपट लपटसों आपको, करै कुगतिके बंध ।
पाप पंथ उपदेश दे, करै औरको अंध ॥ ३६ ॥

आपा हत औरन हतै, वनितावेदी सोय ।
अब लच्छण ताके कहो, पुरुष वेद जो होय ॥ ३७ ॥

ज्यों तृण पूलाकी अगनि, दीखै शिखा उतंग ।
अल्परूप आताप धर, अल्पकालमें भंग ॥ ३८ ॥

तैसैं पुरुषवेद धर जीव । धर्म कर्ममें रहै सदीव ॥
महामगन तप संजम माहिं । तन तावै तनको दुख नाहिं ॥ ३९ ॥

चित उदार उद्धत परिणाम । पुरुषवेद धर आतमराम ॥
तीन मिथ्यात पचीस कषाय । अट्ठाईस प्रकृति समुदाय ॥ ४० ॥

अब सुन आयु चार परकार । नर पशु देव नरक थिति धार ।
मानुष आयु उदय नर भोग । लह तिरजंच आयु पशु जोग ॥४१॥
देव आयु सुरवर विख्यात । नरक आयुसों नरक निपात ॥
बरनी आयुकर्मकी बात । नामकर्म अब कहौं बखान ॥४२ ॥

पिंड प्रकृति चौदह परकार । अट्ठाईस अपिंड विस्तार ॥
पिंडभेद पैंसठ परशस्त । मिलि तिराणवै होंहि समस्त ॥ ४३ ॥

ते तिराणवै कहूं बखान। हिंड अपिंड बियालिस जान॥
प्रथमपिंड प्रकृती गतिनाम। सुर नर पशु नारक दुखधाम॥४४॥

सोरठा।

सुरगतिसों सुर गेह, नरशरीर नरगति उदय।
पशुगतिसों पशुदेह, नरक बसावै नरक गति॥ ४५॥

चौपाई।

चहुंगति आनुपूरवी चार। द्वितिय पिंड प्रकृती अवधार॥
मरण समय तज देह स्वकीय। परभव गमन करै जब जीव॥४६॥
आनुपूरवी प्रकृति पिरेरि। भावीगति में आनें घेरि॥
आनपूरवी होय सहाय। गहै जीव नूतन परजाय॥ ४७॥
तृतिय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार। इग दुग तिग चहु पंच विचार॥
फरस रसन नासा दृग कान। जथाजोग जिय नाम बखान॥४८॥
तन इन्द्रिय धारै जो कोय। मुख नासा दृग कान न होय॥
सो एकेन्द्रिय थावर काय। भू जल अगनि वनस्पति वाय॥४९॥
जाके तन रसना द्वय थोक। संख गिडोला जलचर जोक॥
इत्यादिक जो जंगम जन्त। तेद्वै इंद्री कहै सिद्धन्त॥ ५०॥
जाके तन मुख नाक हजूर। घुन पिपीलिका कानखजूर॥
इत्यादिक तेइन्द्रिय जीव। आंख कानसों रहत सदीव॥ ५१॥
जाके तन रसना नासा आंखि। विच्छु सलभ टीड अलि माखि॥
इत्यादिक जे आतमराम। ते जगमें चौइंद्री नाम॥ ५२॥
देह रसन नासा दृग कान। जिनके ते पंचेंद्री जान॥
नर नारकी देव तिरजंच। इन चारहुके इन्द्री पंच॥ ५३॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार। औदारिक वैक्रियक अहार॥
तैजस कार्माण मिल पंच। औदारिक मानुष तिरजंच॥ ५४॥
वैक्रिय देव नारकी धरै। मुनि तपबल आहारक करै॥
तैजस कार्माण तन दोय। इनको सदा धरैं सबकोय॥ ५५॥
जैसी उदय तथा तिन गही। चौथी पिंड प्रकृति यह कही॥
अब बंधन संघातन दोय। प्रकृति पंचमो छठवीं सोय॥ ५६॥
बंधन उदय काय बंधान। संघातनसों दिढ संधान॥
दुहुँकी दश शाखा द्रय खंध। जथाजोग काया संबंध॥ ५७॥
अब सातमी प्रकृति परसंग। कहौं तीन तन अंग उपंग॥
औदारिक वैक्रियक अहार। अंग उपंग तीन तनधार॥ ५८॥

दोहा।

सिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पद टेक।
आठ अंग ये तनविषै, और उपंग अनेक॥ ५९॥

तैजस कार्माण तन दोय। इनके अंग उपंग न होय॥
कहहुं आठमी प्रकृति विचार। षट् संस्थान रूप आकार॥ ६०॥
जो सर्वंग चारु परधान। सो है समचतुरस्र संठान॥
ऊपर थूल अधोगत छाम। सो निगोधपरिमंडल नाम॥ ६१॥
हेट थूल ऊपर कृश होय। सातिक नाम कहावें सोय॥
कूबर सहित वक्र वपु जासु। कुब्ज अकार नाम है तासु॥६२॥
लघुरूपी लघु अंग विधान। सो कहिये वामन संठान॥
जो सर्वंग असुंदर मुंड। सो संठान कहावै हुंड॥ ६३॥
कही आठमीप्रकृति छभेद। अब नौमी संहनन निवेद॥
है संहनन हाड़को नाम। सो षटविधि थंभै तन धाम॥ ६४॥

बज्र कील कीलित संधान। ऊपरि बज्रपट्ट बंधान॥
अंतर हाड बज्रमय वाच। सो है बज्रवृषभनाराच॥ ६५॥
जहँ सब हाड़ बज्रमय जोय। बज्रमेख सो अविचल होय॥
ऊपर बेढरूप सामान। नाम बज्रनाराच बखान॥ ६६॥
बज्र समान होहिं जहँ हाड। ऊपर बज्ररहित पट आड॥
बज्ररहित कीलीसों विद्ध। सो नाराच नाम परसिद्ध॥ ६७॥
जाके हाड़ बज्रमय नाहिं। अर्द्ध वेध कीली नसमाहिं॥
ऊपर बेठबंधन नहिं होय। अर्द्धनराच कहावै सोय॥ ६८॥
जहां न होय बज्रमय हाड। नहिं पटबंधन कीली गाड॥
कीली विन दिढ़ बंधन होय। नाम कीलिका कहिये सोय॥६९॥
जहां हाडसों हाड़ न बंधै। अमिल परस्पर संधि न संधै॥
ऊपर नसाजाल अरु चाम। सो सेवट संहनन नाम॥ ७०॥
ये संहनन छविधि वरणई। नवमी प्रकृति समापति भई॥
दशमी प्रकृति गमन आकाश। ताके दोय भेद परकाश॥७१॥

दोहा।

शुभविहाय गतिके उदय, भली चाल जिय धार।
अशुभविहाय उदोतसों, ठानै अशुभ विहार॥ ७२॥

पद्धरिछन्द।

अब कहूं ग्यारमी प्रकृतिसंच। जो वरणभेद परकार पंच॥
सित अरुण पीत दुति हरित श्याम। ये वर्ण प्रकृति के पंच नाम॥७३॥
जो वर्ण प्रकृति जाके उदोत। ताको शरीर तिह वर्ण होत॥
रस नाम प्रकृति वारमी जान। सो पंचभेद विवरण बखान॥७४॥

कटु मधुर तिक्त आमल कषाय। रसउदय रसीली होय काय।
जाको जो रस प्रकृती उदोत। ताके तन तैसो स्वाद होत ॥७५॥
तेरहीं प्रकृति गँधमयी होय। दुर्गंध सुगन्ध प्रकार दोय॥
जो जीव जो प्रकृति करै बंध। तिह उदय तासु तन सोह गंध॥७६॥
अब फरस नाम चौदवीं बानी। तिस कहों आठ शाखा बखानि॥
चीकनी रुक्ष कोमल कठोर। लघु भारी शीतल तप्त जोर॥७७॥

दोहा।

प्रकृति चीकनीके उदय, गहै चीकनी देह।
रूखी प्रकृति उदोतसों, रुखीकाया गेह॥ ७८॥
कठिन उदयसों कठिन तन, मृदु उदोत मृदु अंग।
तपत उदयसों तपततन; शीतउदय शीतंग॥ ७९॥

पद्धरिछन्द।

जहँ भारी नाम परकृति उदोत। तहँ भारी तनधर जीव होत॥
लघुप्रकृति उदयधर जीव जोय। अति हरुई काया धरै सोय॥८०॥
ए पिंडप्रकृति दशचार भाखि। इनहीं की पैंसठ कही साखि॥
अब अठावीस अपिण्ड ठानि। तिनके गुणरूप कहों बखानि॥८१॥
जब प्रकृति अगुरुलघु उदय देय। तब जीव अगुरुलघु तन धरेय॥
उपघात उदय सो अंग व्याप। जासों दुख पावै जीव आप॥८२॥
परघात उदयसों होय अंग। जो करै औरंको प्राण भंग॥
उस्सासप्रकृति जब उदय देय। तब प्राणी सास उसास लेय॥८३॥
आतप उदोत तन जथा भान। उद्योत उदय तन शशि समान॥
त्रस प्रकृति उदय धर जीव जोय। जंगम शरीरधर चलै सोय॥८४॥

थावर उदोतधर प्राणधार। लहि थिर शरीर न करै विहार॥
सूक्षम उदोत, लघु देह जास। सो मारै मरै न और पास॥८५॥
बादर उदोत तन थूल होय। सबही के मारे मरै सोय॥
परजापति प्रकृति उदय करंत। जिय पूरी परजापति धरंत॥८६॥
जो प्रकृति अपर्जापत धरेय। सो पूरी परजापत न लेय॥
प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत। सो जीव वनस्पति काय होत॥८७॥
जब तुचा काठ फल फूल पात। जहँ बीज सहित जियराशिसात॥
जो एक देहमें जीव एक। सो जीवराशिकहिये प्रत्येक॥ ८८ ॥
प्रत्येक वनसपति द्विविधिजान। सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित बखान॥
जो धारै राशि अनन्तकाय। सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय॥८९॥
जामें नहिं होय निगोदधाम। सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम॥
अब साधारणवनसपति काय। सो सूच्छम बादर द्विविधि थाय॥९०॥
सूच्छम निगोद जगमें अमेय। बादर यह दूजा नामधेय॥
धरि भिन्न भिन्न कार्माण काय। मिलि जीव अनन्त इकत्र आय ९१
संग्रहहि एक नो कर्म देह। तिस कारण नाम निगोद एह॥
सो पिण्ड निगोद अनन्तरास। जियरूप अनंतानंत भास॥९२॥
भर रहे लोकनभमें सदीव। ज्यों घड़ामाहिं भर रहै घीव॥
सूक्षम अरु बादर दोय साख। पुनि नित्य अनित्य दुभेद भाख॥९३॥
जो गोलकरूपी पंचधाम। अंडर खंडर इत्यादि नाम॥
ले सातनरकके हेट जान। पुनि सकललोकनभमें बखान॥९४॥

दोहा।

एक निगोद शरीरमें, जीव अनंत अपार।
धरें जन्म सब एकठे, मरहिं एक ही बार॥ ९५ ॥

मरण अठारह बार कर, जनम अठारह बेव।
एक श्वास उस्वासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ९६ ॥
एक निगोदशरीरमें, एते जीव बखान।
तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ९७ ॥
बढ़ै न सिद्ध अनंतता, घटै न राशि निगोद।
जैसेके तैसे रहैं, यह जिनवचनविनोद ॥ ९८ ॥
तातैं बात निगोदकी, कहैं कहांलों कोय।
साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ९९ ॥
यह साधारण प्रकृतिलों, बरणी चौदह साख।
बाकी चौदह जे रहैं, ते बरणों मुख भाख ॥ १०० ॥

पद्धरिछन्द।

थिरप्रकृति उदय थिरता अभंग। अस्थिर उदोतसों अथिर अंग ॥
शुभप्रकृति उदय शुभरीति सर्व। जहँ अशुभउदय तहँ अशुभपर्व॥१॥
सौभागप्रकृति जाके उदोत। सो प्राणी सबको इष्ट होत।
दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव। सबको अनिष्ट लागै सदीव ॥ २ ॥
जहँ सुस्वरप्रकृति उदय बखान। तहँ कंठ कोकिला मधुरवान ॥
जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार। ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥ ३ ॥
आदेयप्रकृति जाके उदोत। ताको बहु आदर मान होत ॥
जब अनादेय को उदय होय। तब आदर मान करै न कोय ॥४॥
जसनामउदय जिस जीव पाहिं। ताकी जस कीरति जगत माहिं ॥
जहँ प्रगट भालमहं अजसरेख। तहँ अपजस अपकीरति विशेख ॥५॥
निर्माणचितेरा उदय आय। सब अंगउपंग रचै बनाय ॥
तीर्थंकरनामप्रकृति उदोत। लहि जीव तीर्थंकरदेव होत ॥ ६ ॥

दोहा ।

ये तिरानवे और दश, तन सम्बन्धी आन ।
मिलहिं एकसौतीन सब, होहिं नाम की बान ॥ ७ ॥

चौपाई ।

नामप्रकृति संपूरण भई । पिंड अपिंड कही जो जुई ॥
पिण्डप्रकृति चौदह बनि रही । तिनकी पैंसठ शाखा कही ॥
अट्ठाइस अपिंड बरनई । ते सब मिलि तिरानवे भई ॥
बरनों गोत करम सातमा । जासों ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥
ऊंचगोत उद्योत प्रवान । होवै जीव उच्चकुलथान ॥
नीचगोत फल संगति पाय । जीव नीचकुल उपजै आय ॥ १० ॥

दोहा ।

गोत्रकर्मकी द्वयप्रकृति, तेहू कहीं बखानि ।
अंतराय अब पंचविधि, तिनकी कहों कहानि ॥ ११ ॥

चौपाई ।

अंतराय अष्टम बटमार । सो है भेद पंच परकार ॥
अंतराय तरुकी द्वै डार । निचहै एक एक विवहार ॥ १२ ॥
कहों प्रथम निहचै की बात । जासु उदय आतमगुण घात ॥
परगुन त्याग होहि नहिं जहां । दान अन्तराय कहिं तहां ॥ १३ ॥
आतमतत्त्वलाभकी हान । लाभअन्तराई सो जान ॥
जबलों आतमभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥
बारबार न जमै उपयोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥

अष्टकर्मको करै न जुदा । वीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥
निह्चै कही पंच परकार । अब सुन अन्तराय विवहार ॥
छतीवस्तु कछु देय न सकै । दान अन्तराई बल ढकै ॥ १६ ॥
उद्यम करै न संपति होय । लाभ अन्तराई है सोय ॥
विषयभोग सामग्री छती । जीव न भोग कर सकै रती ॥ १७ ॥
रोग होय कै भोग जुरै । भोगअन्तरायबल फुरै ॥
एक भोगसामग्री सार । ताकौ भोग जु वारंवार ॥ १८ ॥
कीजे सो कहिये उपभोग । ताहू को न जुरै संजोग ॥
यह उरभोगघातकी कथा । वीरजअन्तराय सुन जथा ॥ १९ ॥
शक्ति अनंत जीवकी कही । सो जगदशामाहिं दब रही ॥
जगमें शक्ति कर्मआधीन । कबहूं सबल कबहूं बलहीन ॥ २० ॥
तनइन्द्रियबल फुरै न जहां । वीरजअन्तराय है तहां ॥
तातें जगतदशा परवान । नय राखी भाखी भगवान ॥ २१ ॥

दोहा ।

ये वरणी व्यवहार की, अन्तराय विधि पंच ॥
अन्तर बहिर विचारतैं, संशय रहै न रंच ॥ २२ ॥
स्यादवाद जिनके वचन, जो मानै परमान ।
सो जानै सब नवदशा, और न कोऊ जान ॥ २३ ॥
सर्वघातिया की प्रकृति, देशघातियावान ॥
बाकी और अघातिया, ते सब कहौं बखान ॥ २४ ॥

केवलज्ञानावरणी वान । केवलदरश आवरण जान ॥
निद्रा पंच चौकरी तीन । प्रकृती द्वादश लीजे चीन ॥ २५ ॥

अनंतबंध अप्रत्याख्यान । प्रत्याखान चौक त्रिक जान ॥
सब मिथ्या मिश्रित मिथ्यात । ए इकवीस [illegible] ॥२६॥

दोहा ।

सर्वघातियाकी कहो, विंशति एक बखान ।
अब बरणों छबीसविधि, देशघातियावान ॥ २७ ॥

चौपाई ।

केवलज्ञानावरणी बिना । बाकी चार आवरण गिना ॥
केवलदरशआवरण छोड़ । बाकी तीनों लीजे जोड़ ॥ २८ ॥
चारभेद संज्वलनकषाय । नवविधि नोकषाय समुदाय ॥
समयप्रकृति मिथ्यात बखान । अन्तरायकी पाँचों वान ॥ २६ ॥
ए छव्वीस प्रकृति सब भई । देशघातियाकी वरनई ॥
बाकी रही एकसौ एक । ते सब कही घाति अतिरेक ॥ ३० ॥

दोहा ।

द्विविधिगोत्र द्वय वेदनी, आयु चारविधिजानि ॥
मिल तिरानवे नाम की, एकोत्तरशत वानि ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जे घातहिं सब आतमदर्व । ते ही कही घातिया सर्व ॥
जे कछु घात करहिं कछु नाहिं । देशघातिया ते इन माहिं ॥ ३२ ॥
जे न करहिं आतमबल घात । ते अघातिया कहीं विख्यात ॥
अब सुन पुण्यपापके भेद । भिन्न भिन्न सब कहों निवेद ॥ ३३ ॥

आनुपूरवी चार विधि, क्षेत्रविपाकी जान ।
चार आयुबलकी प्रकृति, भवविपाकिया बान ॥ ५५ ॥
घाति अघाति त्रिविधि कहे, पुण्य पाप द्वय चाक ।
बंध उदय दोऊ कहे, बरनैं चार विपाक ॥ ५६ ॥
अब इन आठों करमकी, थिति जघन्य उतकृष्ट ।
कहों बात संक्षेपसों, सुनों कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

चौपाई ।

ज्ञानावरणीकी थिति दीस । कोडाकोडीसागरतीस ॥
यह उत्कृष्टदशा परवान । एकमुहूर्त जघन्य बखान ॥ ५८ ॥
द्वितिय दर्शनावरणीकर्म । थिति उत्कृष्ट कहों सुन मर्म ॥
कोडाकोडी तीस समुद्र । एकमुहूरतकी थिति क्षुद्र ॥ ५९ ॥
तीजा कर्म वेदनी जान । कोडाकोडीतीस बखान ॥
यह उत्कृष्ट महाथिति जोय । जघन मुहूरतबारह होय ॥ ६० ॥
चौथा महामोह परधान । थिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥
सागरसत्तरकोडाकोडि । लघुथिति एकमुहूरत जोडि ॥ ६१ ॥
पंचम आयु कही जगदीस । उत्कृष्टी सागर- तेतीस ॥
थिति जघन्य सुमुहूरतएक । यों गुरु कही विचार विवेक ॥ ६२ ॥
छट्ठा नाम कर्मथिति कहों । कोडाकोडी बीस सरदहों ॥
सागर यह उत्कृष्टविधान । आठमुहूर्त जघन्य बखान ॥ ६३ ॥
गोत्रकर्म सातवां सरीस । उत्कृष्टी थिति सागरबीस ॥
कोडाकोडिकाल परमान । लघुथिति आठ मुहूरत मान ॥ ६४ ॥

अष्टम अंतराय दुखदानि । उत्कृष्टी थिति कहीं बखानि ॥
सागरकोडाकोडी तीस । लघुथिति एकमुहूरत दीस ॥ ६५ ॥

चरनी आठों कर्मकी, थिति उत्कृष्ट जघन्य ॥
बाकी मध्यम और थिति, ते असंख्यधा अन्य ॥ ६६ ॥

अब चरनों पल्योपमकाल । तथा सागरोपमकी चाल ॥
कूपभरे जे रोम अपार । ते वरनें नाना परकार ॥ ६७ ॥
पल्योपमके भेद अनेक । तातें यहां न वरना एक ॥
जोजन कूप रोमकी बात । कही जैनमतमें विख्यात ॥ ६८ ॥
कूपकथा जैसी कछु कही । सो पल्योपम कहिये सही ॥
पल्योपम दश कोड़ाकोड़ि । सब एकत्र कीजिये जोड़ि ॥ ६९ ॥
एक सागरोपम सो काल । यह प्रमान जिनमतकी चाल ॥
यहै सागरोपमकी कथा । यथा मुनी मैं वरणी तथा ॥ ७० ॥

आठकर्म अठतालसों, प्रकृतिभेद विस्तार ।
कै जानें जिन केवली, कै जानै गनधार ॥ ७१ ॥

अल्पबुद्धि जैसी सुझ पाहिं । तैसी मैं वरनी इसमाहिं ॥
पंडित गुनी हँसो मत कोय । अल्पमती भाषाकवि होय ॥ ७२ ॥

कर्मकांड आगम अगम, यथाशक्ति मन आन ॥
भाषा मैं रचना कही, बालबोधमें जान ॥ ७३ ॥

कलसा—गीताछन्द

यह कर्म प्रकृतिविधान अविचल, नाम ग्रन्थ सुहावना ।
इसमाहिं गर्भित गुप्तचेतन, गुपत बारह भावना ॥

जो जान भेद बखान सरदहिं, शब्द अर्थ विचारसो।
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप 'बनारसी" ॥ ७४ ॥

दोहा।

सवत् सत्रहसौ समय, फाल्गुणमास वसन्त।
ऋतु शशिवासर सप्तमी, तब यह भयो सिद्धंत ॥ ७५ ॥

इति श्रीकर्मप्रकृतिविधान

अथ कल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषानुवाद

दोहा।

परमज्योति परमातमा, परमज्ञान परवीन।
बंदों परमानंदमय, घट घट अंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

निर्भयकरन परम परधान। भवसमुद्र जलतारण जान॥
शिवमन्दिर अघहरण अनिन्द। वन्दहुं पासचरणअरविन्द ॥२॥
कमठमानभंजन वरवीर। गरिमासागर गुणगंभीर॥
सुरगुरु पार लहैं नहिं जासु। मैं अजान जंपों जस तासु ॥३॥
प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह। क्यों हमसे इह होय निवाह।
ज्यों दिनअंध उलूको पोत। कहि न सकै रविकिरनउदोत ॥४॥
मोहहीन जानै मनमांहि। तोउ न तुमगुण वरणें जाहिं॥
प्रलयपयोधि करै जल बौन। प्रगटहिं रतन गिनै तिहि कौन ॥५॥
तुम असंख्य निर्म्मलगुणखानि। मैं मतिहीन कहों निजबानि॥
ज्यों बालक निज बांह पसार। सागरपरिमित कहै विचार ॥६॥

जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद। तउ न जानहिं तुमगुणभेद ॥
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख। ज्यों पंखी बोलहिं निज भाख ॥७॥
तुम जसमहिमा अगम अपार। नाम एक त्रिभुवन आधार ॥
आवै पवन पद्मसर होय। ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥८॥
तुम आंवत भविजन मनमाहिं। कर्मनिबंध शिथिल हो जाहिं ॥
ज्यों चंदनतरु बोलहि मोर। डरहिं भुजङ्ग लगे चहुओर ॥९॥
तुम निरखतजन दीनदयाल। संकटतैं छूटहिं ततकाल ॥
ज्यों पशु घेर लेहिं निशिचोर। ते तज भागहिं देखत भोर ॥१०॥
तू भविजन तारक किम होह। ते चित धार तिरहिं लै तोह ॥
यह ऐसैं करि जान स्वभाउ। तिरै मसक ज्यों गर्भितवाउ ॥११॥
जिन सब देव किये वश वाम। तैं छिनमें जीत्यो सो काम ॥
ज्यों जल करै अग्निकुलहानि। बड़वानल पीवै सो पानि ॥१२॥
तुम अनन्त गरुवा गुण लिये। क्योंकरभक्ति धरू निजहिये ॥
ह्वै लघुरूप तिरहि संसार। यह प्रभुमहिमा अकथ अपार ॥१३॥
क्रोध निवार कियो मनशांति। कर्म सुभटजीते किहिं भांति ॥
यह पटतर देखहु संसार। नीलवृक्ष ज्यों दहै तुसार ॥१४॥
मुनिजनहिये कमल निज टोहि। सिद्धरूप समध्यावहिं तोहि ॥
कमलकर्णिका विन नहिं और। कमलबीज उपजनकी ठौर ॥१५॥
जब तुइ ध्यानधरै मुनि कोय। तब विदेह परमातम होय ॥
जैसे धातु शिलातन त्याग। कनकस्वरूप धवै जब आग ॥१६॥
जाके मन तुम करहु निवास। विनस जाय क्यों विग्रह तास ॥
ज्यों महन्त विच आवै कोय। विग्रह मूल निवारै सोय ॥१७॥

करहिं विबुध जे आतम ध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥
जैसें नीर सुधा अनुमान । पीवत विष विकारकी हान ॥१८॥
तुम भगवंत विमल गुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण संखसौं कहै ॥१६॥

दोहा ।

निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भये अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ २० ॥
सुमनवृष्टि जो सुरकरहि, हेठ वीटमुख सोहिं ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधोमुख होहिं ॥ २१ ॥
उपजी तुम हिय उदधितैं, वाणी सुधा समान ।
जिहिं पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पदथान ॥ २२ ॥
कहहिं सार तिहुंलोकको, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमें, तसु गति ऊरध होय ॥ २३ ॥
सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभुधुनि गरजित घोर ।
श्याम सुतन घनरूप लख, नाचत भविजन मोर ॥ २४ ॥
छवि हत होंहिं अशोकदल, तुमभामंडल देख ।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विशेख ॥ २५ ॥
शीखि कहै तिहुंलोकको, यह सुरदुंदुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २६ ॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित. मुक्तागण छविदेत ।
त्रिविधिरूप धर मनहुं शशि, सेवत नखतसमेत ॥ २७ ॥

पद्धरिछन्द ।

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम । परताप पुंज जिम शुद्ध हेम ॥
अति धवलसुजस रूपा समान । तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥२८॥

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल । तिन शीसमुकुट तज देहिं माल ॥
तुव चरण लगत लहलहैं प्रीति । नहिं रमहि और जन सुमनरीति ॥२९॥

प्रभुभोग विमुख तन कर्म दाह । जन पार करत भवजल निवाह ॥
ज्यों माटीकलश सुपक होय । ले भार अधोमुख तिरहि तोय ॥३०॥

तुम महाराज निर्धन निराश । तज विभव विभव सब जग विकाश ॥
अक्षर स्वभावसैलिखै न कोय । महिमा अनन्त भगवंत सोय ॥३१॥

कोप्यो सु कमठ निज वैर देख । तिन करी धूल वर्षा विशेख ॥
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन । सो भयो पापी लंपट मलीन ॥३२॥
गरजंत घोर घन अंधकार । चमकंत विज्जु जलमुसलधार ॥
वरपंत कमठ धरध्यान रुद्र । दुस्तर करंत निजभवसमुद्र ॥३३॥

वस्तु छन्द ।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि ।
भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण ।
अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनि करंत जिमि मत्तवारण ॥
कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह कंठ ।
ह्वै निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदृढगंठ ॥

चौपाई ।

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल । सेवहिं तज मायाजंजाल ॥
भाव भगतिमन हरष अपार । धन्य २ जग तिन अवतार ॥३५॥

भवसागरमहं फिरत अजान । मैं तुम सुजश सुन्यों नहिं कान ॥
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै । तासों बिपति भुजंगम डरै ॥३६॥

मनवांछित फल जिनपदमांहि । मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥
माया मगन फिर्‌यो अज्ञान । करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥३७॥
मोहतिमर छायो दृग मोहि । जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ॥
तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरमछेद के कुवचन कहैं ॥३८॥
सुन्यो कान जस पूजे पाय । नैनन देख्यो रूप अघाय ॥
भक्ति हेतु न भयो चित चाव । दुखदायक किरियाविन भाव ॥३९॥
महाराज शरणागत पाल । पतितउधारण दीनदयाल ॥
सुमिरण करहुँ नाय निज शीस । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥४०॥
कर्मनिकन्दनमहिमा सार । अशरणशरण सुजश विसतार ॥
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय । तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥
सुरगण वन्दित दया निधान । जगतारण जगपति जगजान ॥
दुखसागरतैं मोहि निकासि । निर्भयथान देहु सुखराशि ॥४२॥
मैं तुम चरणकमल गुन गाय । वहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥
जन्मजन्म प्रभु पावहुँ तोहि । यह सेवा फल दीजे मोहि ॥४३॥

दोधकान्त वेसरी छन्द । षट्पद

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजश जे भविजन भाषहिं ।
ते निज पुण्य भंडार, संच चिरपाप प्रणासहिं ॥
रोमरोम हुलसंति अंग प्रभु गुणमनध्यावहिं ।
स्वर्गसंपदा भुंज, वेग पंचम गति पावहिं ॥
यह कल्याणमन्दिर कियो, कुमुदचन्द्र की बुद्धि ।
भाषा कहत बनारसी, कारण समकितशुद्धि ॥४४॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्रं ।

अथ साधुवन्दना लिख्यते

दोहा ।

श्रीजिनभाषित भारती, सुमरि आन मुखपाठ ।
कहों मूल गुण साधुके, परमित विंशतिआठ ॥ १ ॥
पंचमहाव्रत आदरन, समति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, षट अवशिक आचार ॥ २ ॥
भूमिशयन मंजनतजन, वसनत्याग कचलोच ।
एकवार लघुअसन तिथि–असन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाई ।

थावर जन्तु पंच परकार । चार भेद जंगम तन धार ।
जो सब जीवनको रखपाल । सो सुसाधु वन्दहु तिरकाल ॥४॥
संतत सत्य वचन मुख कहै । अथवा मौनविरत धर रहै ।
मृषावाद नहिं बोलै रती । सो जिन मारग सांचा जंती ॥५॥
कौड़ी आदि रतन परजंत । घटित अघट धनभेद अनंत ॥
दत्त अदत्त न फरसै जोय । तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥६॥
पशु पंखी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी रति सेव ॥
वर्जहिं निरन्तर मदन विकार । सो मुनि नमहु जगत हितकार ॥७॥
द्विविधि परिग्रह दशविधि जान । संख असंख अनन्त बखान ॥
सकल सगतज होय निराश । सो मुनि लहै मोक्ष पदवास ॥८॥
अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥
सदय हृदय साधै शिव पंथ । सो तपीश निरभय निर्ग्रन्थ ॥९॥

निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुख हीन ॥
ऐसे सुवचन कहै स्वभाव । सो ऋषिराज नमहुं धरि भाव १०॥
उत्तम कुल श्रावक संचार । तासु गेह प्राशुक आहार ॥
भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि बंदौं सुरति संभाल ॥११॥
उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुं जोर कर दोय ॥१२॥
रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अंग उठान ॥
डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उरधार ॥१३॥
कोमल कर्कश हरुव सभार । रुक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन दुख सुखलहैं । सो मुनिराज जिनेश्वर कहैं ॥१४॥
आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहिं तिहँ देव ।१५
शुभ सुगंध नाना परकार । दुखदायक दुर्गन्ध अपार ॥
नासा विषय गनहिं समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल ॥१६॥
श्यामहरित सित लोहित पीत । वरण विवरण मनोहर भ त ॥
ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध ॥१७॥
शब्द कुशब्दहिं समरस साद । श्रवण सुनत नहिं हरप विषाद ॥
थुति निंदा दोऊ सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥१८॥
सामाइक साधै तिहुं काल । मुकति पंथकी करै सँभाल ॥
शत्रुमित्रदोऊ सम गणै । सो मुनिराज करमरिपु हणै ॥१९॥
अहत सिद्ध सूरि उवझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणन में मन लाय । तिस मुनिवरके वन्दों पाय ॥२०॥

पावन पंचपरम पद इष्ट । जगतमाहिं जानै उतकिष्ट ॥
ठानै गुणथुति बारंबार । सो मुनिराज लहै भवपार ॥२१॥
ज्ञान क्रिया गुणधारै चित्त । दोष विलोक करै प्राछित्त ॥
नित प्रतिक्रमणक्रियारसलीन । सो सुसाधु संजम परवीन ॥२२॥
श्रीजिनवचन रचन विसतार । द्वादशांग परमागम सार ॥
निजमति मान करै सब्भाउ । सो मुनिवर बंदहु धर भाउ ॥२३॥
काउसग्ग मुद्रा धर नित्त । शुद्धस्वरूप विचारै चित्त ॥
त्यागै त्रिविधिजोग ममकार । सो मुनिराज नमो निरधार ॥२४॥
प्राशुक शिला उचित भूखेत । अचल अंग समभाव सचेत ॥
पश्चिमरैन अलप निद्राल । सो योगीश्वर वंचै काल ॥२५॥
धर्मध्यान जुत परम विचित्र । अन्तर बाहिज सहज पवित्र ॥
न्हान विलेपन तजै त्रिकाल । बन्दों सो मुनि दीनदयाल ॥२६॥
लोकलाजविगलित भयहीन । विषयवासनारहित अदीन ॥
नगन दिगम्बर मुद्राधार । सो मुनिराज जगत सुखकार ॥२७॥
सघन केश गर्भित मलकीच । त्रस असंख्य उतपति तसुबीच ॥
कच लुंचै यह कारण जान । सो मुनि नमहुं जोरजुगपान ॥२८॥
छुधा वेदनी उपशम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
एकवार लघु भोजन करै । सो मुनि मुकति पंथ पगधरै ॥२९॥
देह सहारौ साधन मोष । तबलौं उचित कायबल पोष ॥
यह विचार थिति लेहिं अहार । सो मुनि परम धरम धनधार ॥३०॥
जहँ जहँ नवदुवारमलपात । तहँ तहँ अमित जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवन काज । सो शिवपथसाधक ऋषिराज ॥३१॥

ये अट्ठाविस मूल गुण, जो पालहिं निरदोष।
सो मुनि कहत "बनारसी" पावै अविचल मोष॥ ३२॥

इतिसाधुवन्दना

अथ मोक्षपैडी लिख्यते

दोहा।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खै सुनमल्ल।
जो तुझ अंदरचेतना, वहै तुसाड़ी अल्ल॥ १॥
ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला।
अक्खै रोचकशिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला॥
इस बुझै बुध लहलहै, नहीं रहै मयल्ला।
इसदा मरम न जानई, सो द्विपद बयल्ला॥ २॥
जिसदी गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला।
जिसना रंगी तिमिरसों, सूझै झलमल्ला॥
खनै जिन्हादी भूमिनौ, कुज्ञान कुदल्ला।
सहज तिन्हादा वहजसों, चित रहै दुदल्ला॥ ३॥
जिन्हा इक करसदा, दुविधा पद भल्ला।
इक अनिष्ट असोहणा, इक झाक झमल्ला॥
तिन्हां इकन सूझई, उपदेश अहल्ला।
कंककटाछे लोपना, ज्यों चंद गहल्ला॥ ४॥
जिन्हां चित इतवारसों, गुरुवचन न झल्ला।
जिन्हां आमें कथन यो, ज्यों कोदों दल्ला॥

बरसे पाहन भुम्मिमें, नहिं होय चहल्ला ।
बोये बीज न ऊप्पजे, जल जाय बहल्ला ॥ ५ ॥

चेतन इस संसारमें, तू सदा इकल्ला ।
आपै रूप पिशाच, ह्वै तैं अप्पा छल्ला ॥
आपै घुम्यां गिरि पया, किणिदित्ता टल्ला ।
जिन्हसों मिलन विजोग है, तिनसों क्या तल्ला ॥ ६ ॥

इस दुनियांदी मोजसों, तू गरवगहल्ला ।
भया भार खम पुरुष, ज्यों छप्पर त्रिच बल्ला ॥
सुपनैदा सुख मान तैं, अपना घर घल्ला ।
फिरा भरमकी भौंरमें, तू सहज चिलल्ला ॥ ७ ॥

जोग अडंवर तैं किया, कर अंवर मल्ला ।
अंग विभूति लगायके, लीनी मृग छल्ला ॥
ह्वै वनवासी तैं तजा, घरवार महल्ला ।
अप्पापर न पिछाणियां, सब झूठी गल्ला ॥ ८ ॥

माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सल्ला ।
तिहुं वादी करतूतसों जियदा उरझल्ला ॥
ज्यों रुधिरादी पुट्टसों, पट दीसै लल्ला ।
रुधिर.नलहि पखालिये, नहिं होय उजल्ला ॥ ९ ॥

जब लग तेरी समझमें, होंदी हल चल्ला ।
सुजश वढ़ाई लाभनो, करदा छल बल्ला ॥
तबलग तू स्याणा नहीं, क्या मारइ कल्ला ।
सोर करंदा पालणै, ज्यों झूलै लल्ला ॥ १० ॥

किण तूं जकरा सांकलां, किण पकरा पल्ला।
मिदमकरा जौं उरभिया, उर जाल उगल्ला॥
चेतन जड़ संजोगमैं, तैं टांका भल्ला।
तुही छुडावहि आपको, लख रूप इकल्ला॥ ११॥

जो तैं दारिद मानिया, ह्वै ठल्लमठल्ल।
जो तू मानहि संपदा, भरि दामहू गल्ला॥
जो तू हुवा करंकसा, अरु मोगर मल्ला।
सो सब नाना रूप ह्वै, नाचै पुद्गल्ला॥ १२॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूप रसल्ला।
वै संघा भरि जोवना, बूढा अरु वल्ला॥
लंब मझोला ठींगना, गोरा अरु कल्ला।
सो सब नानारूप है, निहचै पुग्गल्ला॥ १३॥

जो जीरण ह्वै झरपडै, जो होय नवल्ला।
जो मुरझावै सुककै, फूला अरु फल्ला॥
जो पानीमें बह चलै, पावकमैं जल्ला।
सो सब नानारूप ह्वै, निहचै पुग्गल्ला॥ १४॥

एक कर्म द्वीसै दुधा, ज्यों तुलदा पल्ला।
हरुवै तन गुरुवैतसों, अध ऊरध थल्ला॥
अशुभरूप शुभरूप ह्वै, दुहु दिशिनो चल्ला।
धरै दुविधि विस्तार जौं, वट विरख जटल्ला॥ १५॥

पवन परै रे जो उडै, माटो विच गल्ला।
जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला॥

पापी पावक पौन भू, चहुंधामैं रल्ला ।
सो सब नाना रूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १६ ॥

खिणरोवे खिणमे हंसै, जौ मदमतवल्ला ।
त्यों दुहुंवादी मौजसों, वेहोश सभल्ला ॥
ईकसवीच विनोद है, इकमे खलफल्ला ।
समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसो हलभल्ला ॥ १७ ॥

जति दुहूंकी एक जौ, मणि पत्थर डल्ला ।
जल विथार सॅकोच सों कहिए नदि नल्ला ॥
उद्धत जलपरवाहमे, जौ भौर वुलल्ला ।
त्यों इस कर्म विपाकदे, विंच ऊंचा खल्ला ॥ १८ ॥

दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोई अटल्ला ।
ऊंच नीच इक सम करै, कलिकाल पटल्ला ॥
अध ऊरध ऊरध अधो, थिति उथल पुथल्ला ।
अरहट हार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥ १९ ॥

पाया देवशरीरज्यों, नलनीर उछल्ल ।
भव पूरण कर ढहि पयो, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥
पुण्य पाप विच खेद है, यह भेद न भल्ला ।
ज्ञान किया निरदोष है, जहँ मोख महल्ला ॥ २० ॥

वतनु तु साडा मोहमैं, जौं रोह रुहल्ला ।
थिति प्रवाण तुभ नो भया, गुरुज्ञान दुहल्ला ॥
अब घट अंतर घटगई, भव भीर चुहल्ला ।
परम चाह परगट भई, शिव राह सहल्ला ॥ २१ ॥

ज्ञान दिवाकर ऊगियो, मति किरण प्रवल्ला।
है शत खंड विहंडिया, भ्रम तिमर पटल्ला।
सत्य प्रतापै भंजिया, दुर्गती दुहल्ला।
अंगि अंग.रे दज्झिया, जौं तूल पहल्ला॥ २२॥

दोहा।

यह सतगुरुदी देशना, कर आस्रव दीवाड़ि।
लद्धी पैढि मोखदी, करम कपाट उघाडि॥ २३॥
भव थिति जिनकी घटगई, तिनको यह उपदेश।
कहत 'बनारसिदास' यों, मूढ़ न समुझै लेश॥ २४॥

॥ इति श्रीमोखपैडी॥

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते

दोहा।

परम निरंजन परमगुरु, परमपुरुष परधान।
वन्दहुं परमसमाधिगत, भयभंजन भगवान॥ १॥
जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु शीख मन आन।
कछुक जीव अरु कर्मको, निर्णय कहों वखान॥ २॥
अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अकाश।
सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास॥ ३॥
जीव द्रव्यकी द्वै दशा, संसारी अरु सिद्ध।
पंच विकल्पअजीव के, अखय अनादि असिद्ध॥ ४॥

गगन, काल, पुद्गल, धरम, अरु अधर्म अभिधान।
अब कछु पुद्गल द्रव्यको, कहों विशेष विधान॥ ५॥
चरमदृष्टिसों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत।
जड़ लच्छण निर्जीव दल, रूपी मूरतिवंत॥ ६॥
जो त्रिभुवन थिति देखिये, थिर जंगम आकार।
सो पुद्गल परवानको, है अनादि विस्तार॥ ७॥
अब पुद्गलके बीसगुण, कहों प्रगट समुझाय।
गर्भित और अनन्तगुण, अरु अनन्त परजाय॥ ८॥
श्याम पीत उज्ज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति।
विविधवर्ण जो देखिये, सो पुद्गलकी कांति॥ ९॥
आमल तिक्त कषाय कटु, ज्ञार मधुर रसभोग।
ए पुद्गलके पांचगुण, घट मानहिं सबलोग॥ १०॥
तातो सीरो चीकनो, रूखो नरम कठोर।
हलका अरु भारीसहज, आठ फरस गुणजोर॥ ११॥
जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप।
अब पुद्गल परजायकी, महिमा कहों अनूप॥ १२॥
शब्द, गध, सूक्षम, सरल, लम्ब, वक्र, लघु थूल।
बिछुरन, भिदन, उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल॥ १३॥
छाया, आकृति, तेज, दुति, इत्यादिक बहु भेद।
ए पुद्गलपरजाय सब, प्रगटहिं होय उछेद॥ १४॥
केई शुभ केई अशुभ, रुचिर, भयानक भेष।
सहज स्वभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष॥ १५॥
गर्भित पुद्गलपिंडमें, अलख अमूरति देव।

फिरै सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी टेव ॥ १६ ॥

पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति।
पुद्गलको आप गणै, यहै भरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस।
याही भरम विभावसों, बढै करमको वंश ॥ १८ ॥

ज्यों ज्यों कर्म विपाकवश, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यों त्यों निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥

ज्यों वानर मदिरा पिये, विच्छू डंकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥

भ्रम संशयकी भूलसों, लहै न सहज स्वकीय।
करम रोग समुझै नहीं, यह संसारी जीय ॥ २१ ॥

कर्म रोगके द्वै चरण विषम दुहूंकी चाल।
एक कंप प्रकृती लिये, एक ऐंठि असराल ॥ २२ ॥

कंपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य।
ज्ञान रूप है आतमा, दुहूं रोगसों शून्य ॥ २३ ॥

मूरख मिथ्यादृष्टिसों, निरखै जगकी रौंस।
डरहिं जीव सब पापसों, करहिं पुण्यकी हौंस ॥ २४ ॥

उपजै पापविकारसों, भय तापादिक रोग।
चिन्ता खेद विथा बढै, दुखमानै सबलोग ॥ २५ ॥

उपजै पुण्यविकारसों, विषयरोग विस्तार।
आरत रुद्र विथा बढै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥

दोऊं रोग समान है, मूढ न जानै रीति।
कंपरोगसौं भय करै, अकररोगसौं प्रीति॥ २७॥
भिन्न २ लक्षण लखे, प्रगट दुहूंकी भांति।
एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशांति॥ २८॥
कच्छपकीसी सकुच है, बक्र तुरगकी चाल।
अंधकारकोसो समय, कंपरोगके भाल॥ २९॥
चकरकुंदसी उमँग है, जकरबन्दकी चाल।
मकरचांदनीसी दिपै, अकररोगके भाल॥ ३०॥
तमउदोत दोऊं प्रकृति, पुद्गलकी परजाय।
भेदज्ञान बिन मूढ मन, भटक भटक भरमाय॥ ३१॥
दुहुं रोगको एक पद, दुहुंसौं मोक्ष न होय।
विनाशीक दुहुंकी दशा, बिरला बूझै कोय॥ ३२॥
कोऊ गिरै पहाड़ चढ़, कोऊ बूढ़ै कूप।
मरण दुहूको एक सो, कहिवेको द्वै रूप॥ ३३॥
भववासी दुविधा धरै, तातैं लखै न एक।
रूप न जानै जलधिको, कूप कोषको भेक॥ ३४॥
माता दुहुंकी वेदनी, पिता दुहूंको मोह।
दुहु बेड़ीसो बंधि रहे, कहवत कंचन लोह॥ ३५॥
जाति दुहूंकी एक है, दोय कहै जो कोय।
गहै आचरै सरदहै, सुरबल्लभ है सोय॥ ३६॥
जाके चित जैसी दशा, ताकी तसी दृष्टि।
पंडित भव खंडित करै, मूढ बढावै सृष्टि॥ ३७॥

इति कर्म छत्तीसी।

अथ ध्यानबत्तीसी लिख्यते

दोहा ।

ज्ञान स्वरूप अनन्त गुण, निरावाध निरुपाधि ।
अविनाशी आनन्दमय, वन्दहुं ब्रह्मसमाधि ॥ १ ॥
भानु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निशि होत ।
दोऊं जाके नाम में, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

चौपाई (सोलामात्रा)

चेतहु प्राणी सुन गुरुवाणी । अमृतरूप सिद्धांत वखानी ।
परगट दोऊं नय समुझावें । मरमी होय मरम सो पावें ॥ ३ ॥
चेतन जड़ अनादि संजोगी । आपहि करता आपहि भोगी ।
सहज स्वभाव शकति जब जागै । तब निहचैके मारग लागै ॥ ४ ॥
फिरकै देहबुद्धि जब हो । नयव्यवहार कहावे सोई ।
भेदभाव गुन पंडित बूझै । जाको अगम अगोचर सूझै ॥ ५ ॥
प्रथमहिं दान शील तप भावै । नय निहचै विवहार लखावै ।
परगुणत्यागबुद्धि जब होई । निहचै दान कहावै सोई ॥ ६ ॥
चेतन निज स्वभावमहँ आवै । तब सो निश्चयशील कहावै ।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै । निश्चय तप कहिये इह लेखै ॥ ७ ॥
विमलरूप चेतन अभ्यासै । निश्चयभाव तहां परगासै ।
अब सद्गुरु व्यवहार वखानै । जाकी महिमा सब जगजानै ॥ ८ ॥
मनवचकाय शकति कछु दीजे । सो व्यवहारी दान कहीजे ।
मनवचकाय तजै जब नारी । कहिये सोइ शील विवहारी ॥ ९ ॥

मनवचकाय कष्ट जब सहिये । तासों विवहारी तप कहिये ।
मनवचकाय लगनि ठहरावै । सो विवहारी भाव कहावै ॥ १० ॥

दोहा ।

दान शील तप भावना, चारों सुख दातार ।
निहचै सों निहचै मिलै, विवहारी विवहार ॥ ११ ॥

चौपाई ।

। सुन चार ध्यान हितकारी । साधहिं मुक्तिपंथ व्यापारी ॥
मुद्रा मूरति छवि चतुराई । कलाभेप वलवेस वढाई ॥ १२ ॥
फरस वरण रस गंध सुभाखा । इह रूपस्थध्यानकी शाखा ॥
इनको संगति मनसा साधै । लगन सीख निज गुण आराधै ॥१३॥
रहै मगन सो मूढ कहावै । अलख लखाव विचच्छण पावै ॥
अर्हत आदि पंच पदलीजे । तिनके गुणको सुमरण कीजे ॥१४॥
गुणको खोज करत गुण लहिये । परमपदस्थध्यान सो कहिये ॥
चंचलता तज चित्त निरोधै । ज्ञानदृष्टि घटअन्तर शोधै ॥ १५ ॥
भिन्न भिन्न जड़ चेतन जोवै । गुण विलेच्छ गुणमाहिं समोवै ॥
यह पिंडस्थध्यान सुखदाई । कर्मनिरजरा हेत उपाई ॥ १६ ॥
आप संभार आपसों जोरै । परगुणसों सब नाता तोरै ॥
लगै समाधि ब्रह्ममय होई । रूपातीत कहावै सोई ॥ १७ ॥

दोहा ।

यह रूपस्थपदस्थविधि, अरु पिंडस्थविचार ।
रूपातीत वितीत मल, ध्यान चार परकार ॥ १८ ॥

चौपाई ।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकाशै । ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै ॥
आर्त रौद्र कुध्यानहिं त्यागै । धर्मशुकलके मारग लागै ॥ १९ ॥

आरत ध्यान चितवन कहिये । जाकी संगति दुरगतिलहिये ॥
इष्टविजोग विकलता भारी । अरि अनिष्ट संजोग दुखारी ॥ २० ॥

तनकी व्यथा मगन मन झूरै । अग्र शोचकर वांछति पूरै ॥
ए आरतके चारों पाये । महा। मोहरससों लपटाये ॥ २१ ॥

अब सुन रौद्र ध्यानकी सैली । जहां पापसों मतिगति मैली ॥
मनउछाहसों जीव विराधै । हिये हर्षधर चोरा साधै ॥ २२ ॥

विकसित झूटवचन मुखभाखै । आनंदितचितविपया राखै ॥
चारों रौद्र ध्यानके पाये । कर्मबन्धके हेतु बनाये ॥ २३ ॥

दोहा ।

आरतरौद्र विचारतें, दुखचिन्ता अधिकाय ।
जैसें चढ़ै तरंगिनी, महामेघ जलपाय ॥ २४ ॥

चौपाई ।

आर्त रौद्र कुध्यान बखाने । धर्मध्यान अब सुनहु सयाने ॥
केवल भाषित वाणी मानै । कर्मनाशको उद्यम ठानै ॥ २५ ॥

पूरबकर्म उदय पहिचानै । पुरुषाकार लोकथिति जानै ॥
चारों धर्म ध्या के पाये । जे समुझै ते मारग आये ॥ २६ ॥

अब सुन शुक्ल ध्यानकी वातैं । मिटै मोहकी सत्ता जातैं ।
जोग साध सिद्धांत विचारै। आतम गुण परगुण निरवारै ॥ २७ ॥

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै। पृथक वितर्क आदि पद सो है ॥
उपशम पंथ चढ़ै नहिं कोई। क्षपकपंथ निर्मल मन होई ॥ २८ ॥
तब मुनि लोकालोकविकासी। रहहिं कर्मकी प्रकृति पचासी ॥
केवल ज्ञान लहै जग पूजा। एक वितर्क नाम पद दूजा ॥ २९ ॥
जिनवर आयु निकट जब आवै। तहां बहत्तर प्रकृति खपावै ॥
सूक्षम चित्त मनोबल छीजा। सूक्षम क्रिया नाम पद तीजा ॥ ३० ॥
शक्ति अनंत तहां परकाशै। ततखिन तेरह प्रकृति विनाशै ॥
पंच लघूक्षर परमित बेरा। अष्ट कर्मको होय निवेरा ॥ ३१ ॥
चरण चतुर्थ साध शिव पावै। विपरीत क्रिया निर्वृत्ति कहावै ॥
शुक्ल ध्यानके चारों पाये। मुक्तिपंथकारण समुझाये ॥ ३२ ॥

शुक्ल ध्यान औषधि लगे, मिटै करमको रोग।
कोइला छांडै कालिमा, होत अग्निसंजोग ॥ ३३ ॥
यह परमारथ पंथ गुन, अगम अनन्त बखान।
कहत बनारसि अल्पमति, जथासकति परवान ॥ ३४ ॥

इति ध्यानबत्तीसी

अथ अध्यातमबत्तीसी लिख्यते

शुद्ध वचन सदगुरु कहै, केवल भाषित अंग।
लोक पुरुषपरिमाण सब, चौदह रज्जु उतंग ॥ १ ॥
घृतघटपूरित लोकमें, धर्म अधर्म अकास।
काल जीव पुद्गल सहित, छहों दर्वको वास ॥ २ ॥

छहों दरव न्यारे सदा, मिलै न काहू कोय।
    छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥
चेतन पुद्गल यों मिलैं, ज्यों तिलमें खलि तेल।
    प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको खेल ॥ ४ ॥
वह वाके रससों रमै, वह वासों लपटाय।
    चुम्बक करषै लोहको, लोह लगै तिहँ धाय ॥ ५ ॥
जड़ परगट चेतन गुपत, द्विविधा लखै न कोय।
    यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचच्छण होय ॥ ६ ॥
ज्यों सुवास फल फूलमें, दही दूधमें, घीव।
    पावक काठ पषाणमें, त्यों शरीरमें जीव ॥ ७ ॥
कर्मस्वरूपी कर्ममें, घटाकार घटमाहिं।
    गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यातै परगट नाहिं ॥ ८ ॥
सहज शुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट।
    द्रव्यकर्म नोकर्मसों, बँधी पिंडकी पोट ॥ ९ ॥
ज्ञानरूप भगवान शिव, भावकर्म चित भर्म।
    द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥
ज्यों कोठीमें धान थो, चमी माहिं कनवीच।
    चमी धोय कन राखिये, कोठी धोए कीच ॥ ११ ॥
कोठी सम नोकर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान।
    भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान ॥ १२ ॥
द्रव्यकर्म नोकर्ममल, दोऊ पुद्गल जाल।
    भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल ॥ १३ ॥

द्विविधि ब्रह्मकी चालसों, द्विविधि चक्रको फेर।
एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥
ज्ञानचक्र अन्तर गुपत, कर्मचक्र प्रत्यक्ष।
दोऊं चेतनभाव ज्यों, शुक्लपक्ष, तमपक्ष ॥ १५ ॥
निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि।
परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी घूमि ॥ १६ ॥
ज्ञानचक्रकी ढरनिमें सजग भांति सब ठौर।
कर्मचक्रकी नींदसों, मृषा स्वप्नकी दौर ॥ १७ ॥
ज्ञानचक्र ज्यों दरशनी, कर्मचक्र ज्यों अंध।
ज्ञानचक्रमें निर्ज्जरा, कर्मचक्रमें बन्ध ॥ १८ ॥
ज्ञानचक्र अनुसरणको, देव धर्म गुरु द्वार।
देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावें भवपार ॥ १९ ॥
भववासी जानै नहीं, देवधरमगुरुभेद।
पर्यो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको खेद ॥ १८ ॥
उदय सुकर्म कुकर्मके, रुलै चतुर्गति माहिं।
निरखै बाहिजदृष्टिसों, तहँ शिवमारग नाहिं ॥ २१ ॥
देवधर्म गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै ठौर।
बँधी दृष्टि मिथ्यातसों, लखै औरकी और ॥ २२ ॥
भेषधारिको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव।
धर्म कहै कुल रीतिको, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥
देव निरंजनको कहै, धर्म वचन परवान।
साधु पुरुषको गुरु कहै, यह सुकर्मको ज्ञान ॥ २४ ॥

जानै मानै अनुभवै, करै भक्ति मन लाय।
परसंगति आस्रव सधै, कर्मबन्ध अधिकाय॥ २५॥

कर्मबंधतैं भ्रम बढै, भ्रमतैं लखे न वाट।
अंधरूप चेतन रहै, विना सुमति उद्घाट॥ २६॥

सहजमोह जब उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश।
तब विभाव भवथिति घटै, जगै ज्ञान गुण लेश॥२७॥

ज्ञानलेश सो है सुमति, लखै मुकतिकी लीक।
निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक॥ २८॥

ज्यों सुपरीक्षित जौंहरी, काच डाल मणि लेय।
त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु सेय॥ २९॥

दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध।
परखै आतम संपदा, तजै सनेह विरुद्ध॥ ३०॥

अरचै दर्शन देवता, चरचै चारित धर्म।
दिढ़ परचै गुरुज्ञानसों, यहै सुमतिको कर्म॥ ३१॥

सुमतिकर्मतैं शिव सधै, और उपाय न कोय।
शिवस्वरूप परकाशसों, आवागमन न होय॥ ३२॥

सुमतिकर्म सम्यक्तसों, देव धर्म गुरु द्वार।
कहत 'बनारसि' तत्त्व यह, लहि पावैं भवपार॥ ३३॥

इति श्रीअध्यातमबत्तीसी

अथ श्री ज्ञानपच्चीसी लिख्यते

सुरनर तिर्यंग योनिमें, नरक निगोद भवंत।
महा मोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥ १ ॥

जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाइ।
तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥

लगै भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार।
अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥

जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठे तरंग।
त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ॥ ४ ॥

जहां पवन नहिं संचरै, तहां न जल कल्लोल।
त्यों सब परिग्रह त्यागतों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥

ज्यों काहू विषधर डसै रुचिसों नीम चवाय।
त्यों तुम ममतासों मढे मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥

नीम रसन परसै नहीं निर्विष तन जब होय।
मोह घटे ममता मिटै, विषय न वांछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढ़े, बूडइ अंध अदेख।
त्यों तुम भवजलमें परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥

जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार।
आतम रुचि नौका चढे, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नहीं, महामत्त गजराज।
त्यों मन तृष्णामें फिरै, गणै न काज अकाज ॥ १० ॥

ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि ।
त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥

तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरकी और ।
त्यों तुम संशयमैं परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जांय ।
त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥

जैसैं सब जादव जरे, द्वारावतिकी आग ।
त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ ।
तज माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ़ कंचनकांति ।
पापपुण्य कर त्यों भये, मूढातम वहु भांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहिं तजै, वानहीनके होत ।
घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥

पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्यपापमलखोय ॥ १८ ॥

पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होहिं मलीन ॥ १९ ॥

निंबादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास ।
दुर्ज्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥

जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै चहुं ओर ।
तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥

ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखै सरवर पानि।
तैसैं संवरके किये, कर्म्म निर्ज्जरा जानि॥ २२॥

ज्यों बूटी संजोगतैं, पारा मूर्छित होय।
त्यों पुद्गलसो तुम मिले, आतमशक्ति समोय॥ २३॥

मेल खटाई मांजिये, पारा परगट रूप।
शुल्कध्यान अभ्यासतें, दर्शनज्ञान अनूप॥ २४॥

कहि उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेतु।
आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु॥ २५॥

इति श्रीज्ञानपचीसी

अथ शिवपच्चीसी लिख्यते

दोहा।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान।
वन्दों सिद्धसमाधिमय, शिवस्वरूप भगवान॥ १॥
मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सींव।
बन्दों जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनींव॥ २॥

चौपाई।

शिवस्वरूप भगवान अवाची। शिवमहिमाअनुभवमति सांची॥
शिवमहिमा जाके घट भासी। सो शिवरूप हुवा अविनासी॥३॥
जीव और शिव और न होई। सोई जीववस्तु शिव सोई॥
जीव नाम कहिये व्यवहारी। शिवस्वरूप निहचै गुणधारी॥ ४॥

करै जीव जब शिवकी पूजा। नामभेदतैं होय न दूजा ॥
विधि विधानसों पूजा ठानै। तब शिव आप आपको जानै ॥५॥
तन मंडप मनसा जहं 'वेदी'। शुभलेश्या गह सहज 'संफेदी' ॥
आतमरुचि 'कुंडली' वखानी। तहां 'जलहरी' गुरुकी वानी ॥६॥
भावलिंग सो 'मूरति' थापी। जो उपाधि सो सदा अव्यापी ॥
निर्गुणरूप निरंजन 'देवा'। सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥
समरस 'जल' अभिषेक करावै। उपशम 'रसचन्दन' घसि लावै ॥
सहजानन्द 'पुष्प' उपजावै। गुणगर्भित 'जयमाल' चढ़ावै ॥८॥
ज्ञानदीपकी 'शिखा' संवारै। स्याद्वाद घंटा झनकारै ॥
अगम अध्यातम चौर ढुलावै। चायक 'धूप' स्वरूप जगावै ॥९॥
निहचै दान 'अर्घविधि होवै'। सहजशील गुण 'अक्षत ढोवै ॥
तप 'नेवज' काढै रस पागै। विमलभाव फल राखइ आगै ॥१०॥

जो ऐसो पूजा करै, ध्यानमगन 'शिवलीन।
शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन ॥ ११ ॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई। शिवमुद्रा मंडित जो होई ॥
सुरसरिता करुणारसवाणी। सुमति गौरि अर्द्धङ्ग वखानी ॥ १२ ॥
त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेखा। विमलभावसमकित शशिलेखा ॥
सुगुरु शीख सिंगी उर बांधै। नयविवहार बाघम्बर कांधे ॥ १३ ॥
कबहूं तन-कैलाश कलोलै। कबहुं विवेकबैल चढ़ डलै ॥
रुंडमाल परिणाम त्रिभंगी। मनसा चक्र फिरै सरवंगी ॥ १४ ॥

शक्ति विभूति अंगछबि छाजै। तीन गुपति तिरशूल विराजै।
कंठ विभाव विषम विष सोहै। महामोह विषहर नहिं पोहै ॥१५॥

संजम जटा सहज सुख भोगी। निहचैरूप दिगम्बर जोगी॥
ब्रह्म समाधिध्यान गृह साजे। तहां अनाहत डमरू बाजै॥ १६॥

पंच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान।
ग्यारह प्रतिमा साधतै, ग्यारह रुद्र समान॥ १७॥

मंगल करन मोखपद ज्ञाता। यातैं शंकर नाम विख्याता॥
जब मिथ्यामत तिमर विनाशै। अंधकहरण नाम परकाशै ॥१८॥

ईश महेश अखयनिधिस्वामी। सर्व नाम जग अंतरजामी॥
त्रिभुवन त्याग रमै शिवठामा। कहिये त्रिपुरहरण तव नामा ॥१९॥

अष्टकर्मसों भिडै अकेला। महारुद्र कहिये तिहिं वेला॥
मनकामना रहै नहिं कोई। कामदहन कहिये तब सोई॥ २०॥

भववासी भवनाम धरावै। महादेव यह उपमा पावै॥
आदि अन्त कोई नहीं जानै शंभुनाम सब जगत बखानै॥ २१॥

मोहहरण हर नाम कहीजे। शिवस्वरूप शिवसाधन कीजै॥
तज करनी निश्चयमें आवै। तब जगभंजन बिरद कहावै॥ २२॥

विश्वनाथ जगपति जग जानै। मृत्युंजय तम मृत्यु न मानै॥
शुक्ल ध्यान गुण जब आरोहै। नाम कपूरगौर तब सोहै॥ २३॥

इहिविधि जे गुण आदरै, रहै राचि जिहँ ठाँव।
जिहँ जिहँ मारग अनुसरै, ते सब शिवके नाँव ॥२४॥

नांव जथामति कल्पना, कहूं प्रगट कहुं गूढ़ ।
गुणी विचारै वस्तु गुण, नांव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥

मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों प्रीति ।
पंडित लखै 'बनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥२६॥

इति शिवपच्चीसी

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते

जैसें काहू पुरुषको, पार पहुंचवे काज ।
मारगमाहि समुद्र तहां, कारणरूप जहाज ॥ १ ॥

तैसें सम्यकवंतको, और न कछु इलाज ।
भवसमुद्रके तरणको, मन जहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहिं ।
मूरख मर्म न जानहीं, बाहिर खोजन जाहिं ॥ ३ ॥

मूरखहूके घटविषै, जलजहाज अरु पौन ।
दृगमुद्रित मालीम तहँ, लखै सँभारै कौन ? ॥ ४ ॥

कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकषाय तरंग ।
बडवागनि तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सरबंग ॥५॥

भरम भँवर तामें फिरै, मनजहाज चहुं ओर ।
गिरै खिरै बूडै तिरै, उदय पावनके जोर ॥६॥

जब चेतन मालिम जगै, लखै विपाक नजूम।
डारै समता शृंखला, थकै भँवर की घूम ॥७॥
मालिम सहज समुद्रको जानै सब विरतंत।
शुभोपयोग तहँ रत्न सम, अशुभ भाव जलजंत ॥८॥
जन्तु देख नहिं भय करै, रत्न देख उच्छाह।
करै गमन शिवदीपको, यह मालिमकी चाह ॥९॥
दिशि परखै गुणजंत्रसों, फेरै शकति सुखान।
धरै साथ शिवदीपमुख; बादवान शुभध्यान ॥ १० ॥
चहै शुद्ध उद्धत पवन; गहै त्तिपक दिशिनीक।
लहै खबर शिवदीपकी रहै दृष्टिगति ठीक ॥ ११ ॥
मनजहाज इहिविधि चलै, गेहै सिंधुजलवाट।
आवै निज संपतिनिकट, पावै केवल घाट ॥ १२ ॥
मालिम उतर जहाजसों, करै दीप को दौर।
तहां न जल न जहाज गति, नहिं करनी कछु और ॥१३॥
मालिमकी कालिममिटी, मालिम दीप न दोय।
यह भवसिन्धुचतुर्दशी, मुनिचतुर्दशी होय ॥ १४ ॥

इति सिन्धुचतुर्दशी

अथ अध्यातम फाग लिख्यते

अध्यातम बिन क्यों पाइये हो, परमपुरुषको रूप।
अघट अंग घट मिल रह्यो हो, महिमा अगम अनूप ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १ ॥

॥

विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसंत।
प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमत्त॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ २॥

सुमति कोकिला गह गही हो वही अपूरव वाउ।
भरम कुहर वादरफटे हो, घट जाडो जड़ ताउ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ३॥

मायारजनी लघु भई हो, समरस दिवशशिजीत।
मोहपंककी थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ४॥

शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहिं अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति बेलिविस्तार॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ५॥

शशिविवेक निर्मल भयो हो, थिरता अमिय झकोर।
फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ६

सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द।
हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ७

दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निर्ज्जरा जोर।
धार धारणा बहचली हो, शिवसागर मुख ओर॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ८

वितथवात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज।
जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्तके राज॥
'अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ९

भवपरणति चाचरि भई हो, अष्टकर्म बनजाल ॥
अलख अमूरति आतमा हो, खेलै धर्म धमाल ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १० ॥

नयपंकति चाचरि मिलि हो, ज्ञानध्यान डफताल ।
पिचकारी पद साधना हो, संवर भाव गुलाल ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ ११ ॥

राग विराग अलापिये हो, भावभगति शुभ तान ।
रीझ परम रसलीनता हो, दीजे दश विधिदान ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १२ ॥

दया मिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान ।
शील सलिल अति सीयलो हो, संजम नागर पान ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १३ ॥

गुपति अग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति ।
अकथ कथा मुखभखिये हो, यह गारी निरनीति ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥१४॥

उद्धत गुण रसिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम ।
सुरत तरंगरह छकि रहे हो, मनसा वाचा नेम ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥१५॥

परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग ।
आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥१६॥

प्रकृति पचासी लगि रही हो, भस्म लेख है सोय ।

न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहँ खेल न कोय ॥
अध्यातमविन क्यों पाइये हो.॥१७॥

सहज शक्ति गुण खेलिये हो, चेत "बनारसिदास ।"
सगे सखा ऐसे कहै हो, मिटै मोहदधि फास ॥
अध्यातमविन क्यों पाइये हो ॥ १८ ॥

इति अध्यातमधमार ।

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई

परिवा प्रथम कला घट जागी । परम प्रतीतिरीति रसपागी ॥
प्रतिपद परम प्रीति उपजावै । वहै प्रतिपदा नाम कहावै ॥ १ ॥
दूज दुहूँधी दृष्टि पसारै । स्वपरविवेकधारणा धारै ॥
दर्वित भावित दीसै दोई । द्वय नय मानत द्वितीया होई ॥ २ ॥
तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै । त्रिविधिरूप त्रिभुवन आभासै ॥
तीनों शल्य उपाधि उछेदै । त्रिधा कर्मकी परिणति भेदै ॥ ३ ॥
चौथ चतुर्गतिको निरवारै । कर चकचूर चौकरी चारै ॥
चारों वेद समुझि घर आवै । तव सुअनंत चतुष्टय पावै ॥ ४ ॥
पांचै पंच सुचारित पालै । पंचज्ञानकी सुरति संभालै ॥
पांचों इन्द्रिय करै निरासा । तब पावै पंचमगति वासा ॥ ५ ॥
छठ छहकाय स्वांग धर सोवै । छह रस मगन छ आकृति होवै ॥
जब छहदरशनमें न अरूझै । तब छ दर्वसों न्यारा सूझै ॥ ६ ॥
सातैं सातों प्रकृति खिपावै । सप्तभंग नयसों मन लावै ॥
त्यागै सात व्यसनविधि जेती । निर्भय रहै सात भयसेती ॥ ७ ॥

आठैं आठ महामद भंजै। अष्टसिद्धिरतिसों नहीं रंजै॥
अष्टकर्ममलमूल बहावे। अष्टगुणातम सिद्ध कहावै॥ ८॥
नौमी नवरस में रस वेवै। तौ समकित धर नवपद सेवै॥
करै भक्तिविधि नव परकारा। निरखै नवतत्त्वनसों न्यारा॥ ९॥
दशमी दशदिशिसों मन मोरै। दश प्राणनसों नाता तोरै॥
दशविधि दान अभ्यंतर साधै। दशलच्छण मुनिधर्म अराधै॥१०॥
ग्यारस ग्यारह प्रकृति विनाशै। ग्यारह प्रतिमापद परकाशै॥
ग्यारह रुद्र कुलिंग वखानै। ग्यारह विथा जोग जिन मानै॥ ११॥
बारस बारह विरति बढावै। बारह विधि तपसों तन तावै॥
बारहभेद भावना भावै। बारह अंग जिनागम गावै॥ १२॥
तेरस तेरह क्रिया संभालै। तेरह विघन काठिया टालै॥
तेरहविधि संजम अवधारै। तेरह थानक जीव विचारै॥ १३॥
चौदश चौदह विद्या मानै। चौदह गुणथानक पहिचानै॥
चौदह मारगना मन आनै। चौदहरज्जु लोक परवानै॥ १४॥
पन्द्रस पन्द्रह तिथि गनिलीजे। पन्द्रह पात्र परखि धन दीजे॥
पन्द्रह जोगरहित जो धरणी। सो घट शून्य अमावस वरणी॥१५॥
पूनों पूरण ब्रह्मविलासी। पूरण गुण पूरण परगासी॥
पूरण प्रभुता पूरणमासी। कहै साधु तुलसी वनवासी॥ १६॥

इति षोडशतिथिका

अथ तेरह काठिया लिख्यते.

जे वटपारें वाटमे, करहिं उपद्रव जोर।
तिन्हें देश गुजरात में, कहहिं काठियाचोर॥ १॥

त्यों यह तेरह काठिया, करहि धर्मको हानि ।
तातै कछु इनकी कथा, कहहुँ विशेष वखानि ॥ २ ॥

जूआ[१] आलस[२] शोक[३] भय[४], कुकथा[५] कौतुक[६] कोह[७] ।
कृपणबुद्धि[८] अज्ञानता[९], भ्रम[१०] निद्रा[११] मद[१२] मोह[१३] ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया 'जूआ' जान । जामे पंच वस्तुकी हान ।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म । मिटै सुजश विनशै धनशर्म ॥ ४ ॥
द्वितिय काठिया 'आलसभाव" । जासु उदय नाशै विवसाव ॥
बांहिर शिथिल होहिं सब अंग । अतर धर्मवासना भग ॥ ५ ॥
ठग तीसरो 'शौक' सताप । जासु उदय जिय करै विलाप ॥
सूनक पातक जिहि पर होय । धर्मक्रिया तहँ रहै न कोय ॥ ६ ॥
'भय' चतुर्थ काठिया वखान । जाके उदय होय वलहान ॥
उर कंपै नहिं फुरै उपाय । तव सुधर्म उद्यम मिट जाय ॥ ७ ॥
ठग पंचम "कुकथा" बकवाद । मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद ॥
जबलों जीव मगन इसमाहि । तबलों धर्म वासना नाहिं ॥ ८ ॥
"कौतूहल" छट्ठम काठिया । भ्रमविलाससों हरपै हिया ॥
मृषा वस्तु निरखै धर ध्यान । विनशि जाय सदर्शरथ ज्ञान ॥ ९ ॥
"कोप" काठिया है सातमा । अग्नि समान जहां आतमा ॥
आप न दाह औरको दहै । तहा धर्मरुचि रंचन रहै ॥ १० ॥
"कृपणवुद्धि" अष्टम वटपार । जामे प्रगट लोभ अविकार ॥
लोभ माहिं ममता परकाश । ममता करै धर्मको नाश ॥ ११ ॥
नवमा ठग "अज्ञान" अगाध । जासु उदय उपजै अपराध ॥
जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहा धर्म न होय ॥१२॥

दशम काठिया 'भ्रम' विच्छेप। भ्रमसों अशुभ करमका लेप॥
अशुभ कर्म दुरमति की खानि। दुरमति करै धर्मकी हानि॥१३॥
एकादशम काठिया 'नींद'। जासु उदय जिय वस्तु न वींद॥
मन बच काय होय जड़रूप। बूड़ै धन कमघनकूप॥१४॥
ठग द्वादशम "अष्टमद" भार। जामें अकररोग अविकार॥
अकररोग अरु विनयविरोध। जहँ अविनय तहँ धर्मनिरोध॥१५॥
तेरम चरम काठिया "मोह"। जो विवेकसों करै विछोह॥
अविवेकी मानुप तिरजंच। धर्मधारणा धरै न रंच॥१६॥

येही तेरह करम ठग। लेहिं रतन त्रय छीन॥
यातैं ससारी दशा। कहिये तेरह तीन॥१७॥

इति त्रयोदश काठिया।

अथ अध्यातम गीत लिख्यते,

राग गौरी

मेरा मनका प्यारा जो मिलै। मेरा सहज सनेही जो मिलै॥टेक॥
अवधि अजोध्या आतम राम। सीता सुमति करै परणाम॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज०॥१॥
उपज्यो कंत मिलनको चाव। समता सखीसों कहै इसभाव॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥२॥
मै विरहिन पियके आधीन। यों तलफौं ज्यों जल बिन मीन।
मेरा० .... ॥३॥

बाहिर देखूं तो पिय दूर। घट देखे घटमें भर पूर॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार। वचनअगोचर मनके पार॥
मेरा० .... . ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय। कबधों पियको दर्शन होय॥
मेरा० . ॥ ६ ॥

सुगम सुपंथ निकट है ठौर। अंतर आड विरहकी दौर॥
मेरा० .... ॥ ७ ॥

जब देखों पियकी उनहार। तन मन सर्वस डारों वार॥
मेरा० .... ॥ ८ ॥

होहुँ मगन मैं दरशन पाय। ज्यों दरियामें बूंद समाय॥
मेरा० ... .. ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय। ओला गल पाणी ज्यों होय॥
मेरा० .... ॥१०॥

मैं जग ढूंढ फिरी सब ठोर। पियके पटतर रूप न ओर॥
मेरा० .... ॥ ११॥

पिय जगनायक पिय जगसार। पियकी महिमा अगम अपार॥
मेरा० .... .. ॥१२॥

पिय सुमिरत सब दुख मिट जाहिं। भोरनिरख ज्यों चोर पलाहिं॥
मेरा० .... ॥१३॥

भयभंजन पियको गुनवाद। गजगंजन ज्यों केहरिनाद॥
मेरा० .... ॥१४॥

भागइ भरम करत पियध्यान । फटइ तिमिर ज्यों ऊगत भान ॥
मेरा० .... ॥१५॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर । नाग डरइ ज्यों बोलत मोर ॥
मेरा० .... ॥१६॥

बसों सदा मैं पियके गाँउ । पियतज और कहां मैं जाँउ ॥
मेरा० .... ॥१७॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ । जातहिं जात मिलै सब कोइ ॥
मेरा० .... ॥१८॥

पिय मोरे घट, मैं पियमाहिं । जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहिं ॥
मेरा० .... ॥१९॥

पिय मो करता मैं करतूति । पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति ॥
मेरा० .... ॥२०॥

पिय सुखसागर मैं सुखसींव । पिय शिवमन्दिर मैं शिवनींव ॥
मेरा० .... ॥२१॥

पिय ब्रह्मा मै सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ॥
मेरा० .... ॥२२॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि । पिय जिनवर मैं केवलबानि ॥
मेरा० .... ॥२३॥

पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष । पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥
मेरा० .... ॥२४॥

पिय मो रसिया मैं रसरीति । पिय व्योहारिया मैं परतीति ॥
मेरा० .... ॥२५॥

जहां पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहां पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध ॥
मेरा० .... ॥२६॥

जहाँ पिय राजा तहां मैं नीति । जहँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥
मेरा० .... ॥२७॥

पिय गुणग्राहक मैं गुणपांति । पिय बहुनायक मैं बहुभांति ॥
मेरा० .... ॥२८॥

जहँ पिय तहँ मैं पियके संग । ज्यों शशि हरिमें ज्योति अभंग ॥
मेरा० .... ॥२९॥

पिय सुमिरन पियको गुणगान । यह परमारथपंथ निदान ॥
मेरा० ... ... ३०॥

कहइ व्यवहार 'बनारसी' नाव । चेतन सुमति सटी इकठांव ॥
मेरा० .... ॥३१॥

॥ इति चेतनसुमति गीत ॥

अथ पंचपदविधान लिख्यते

दोहा

नमो ध्यानधर पंचपद, पंचसु ज्ञान अराधि ।
पंचसुचरण चितारचित, पंचकरनरिपुसाधि ॥ १ ॥

चौपाई (१५)

बन्दों श्री अरहंत अधीश । बन्दों स्वयंसिद्ध जगदीश ॥
बन्दों आचारज उवझाय । बन्दों साधुपुरुषके पाय ॥ २ ॥
एई पंच इष्ट आधार । इनमें देव एक गुरुचार ॥
सिद्ध देव परसिद्ध उदार । गुरु अरहंतादिक अनगार ॥ ३ ॥

सिद्ध सोई जस करै न कोइ। भयो कदाच न कबहूँ होइ॥
अखय अखंडित अविचलधाम। निर्मल निराकार निरनाम॥४॥
अब गुरु कहों चार परकार। परम निधान धरमधनधार॥
मरमवंत शुभ कर्म सुजान। त्रिभुवनमाहिं पुरुष परधान॥ ५॥
प्रथम परमगुरु श्री अरहंत। द्वितिय परमगुरु सूरि महंत॥
तृतिय परमगुरु श्रीउवझाय। चौथे परम सुगुरु मुनिराय॥६॥
परम ज्ञान दर्शनभडार। वाणी खिरै परम सुखकार॥
परम उदारिक तनधारत। परम सुगुरु कहिये अरहत॥७॥
धर्मध्यान धारै उतकिष्ट। भाषें धर्म देशना मिष्ट॥
धर्मनिधान धर्मसों प्रेम। धर्म सुगुरु आचारज एम॥ ८॥
चौदह पूरव ग्यारह अग। पढै मरम जानै सरवंग॥
परको मर्म कहैं समुझाय। यातैं परम सुगुरु उवझाय॥ ९॥
षट आवश्य कर्म नित करे। त्रिविधि कर्ममता परिहरें॥
विपुल करम साधे समकिती। परम सुगुरु सामानिक जती॥१०॥
पंच सुपद कीजइ चिंतौन। दुरित हरन दुख दारिद दौन॥
यह जप मुख्य और जप गौन। इम गुण महिमा वरणैं कौन॥

दोहा

महामंत्र ये पंचपद, आराधै जो कोय।
कहत 'बनारसिदास' पद, उलट सदाशिव होय॥ १२॥

॥ इति श्री पंचपदविधान॥

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आतमाराम।
वरणो देवी सुमति के, अष्टोत्तरशत नाम ॥॥ १ ॥

॥ रोडक छन्द ॥

सुमति सबुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता।
शशिवदनी सेमुषी शिवमति धिषणा सीता ॥
सिद्धा संजमवती स्यादवादिनी विनीता।
निरदोषा नीरजा निर्मला जगत अतीता ॥
शीलवती शोभावती शुचिधर्मा रुचिरीति।
शिवा सुभद्रा शंकरो, मेधा दृढ़परतीति ॥ २ ॥
ब्रह्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता।
पद्मा पद्मावती वीतरागा गुणमीता ॥
शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता।
समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता ॥
कल्याणी कमला कुशलि, भवभंजनी भवानि।
लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखखानि ॥ ३ ॥
परमा परमेश्वरी परम पण्डिता अनन्ता।
असहाया आमोदवती अभया अघहंता ॥
ज्ञानवती गुणवती गौमती गौरी गंगा।
लक्ष्मी विद्याधरी आदि सुंदरी असंगा ॥
चन्द्राभा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि।
चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि ॥ ४ ॥

चिद्वद्नी चिद्रूप कला वसुमती विचित्रा ।
अर्धंगी अच्चरा जगतजननी जगमित्रा ।
अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदंका ।
दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निकलंका ॥
धर्मधरा धीरज़ धरनि, मोहनाशिनी वाम ।
जगत विकाशिनि भगवती, भरमभेदनी नाम ॥ ५ ॥

घत्तानन्द.

निपुणनवनीता वितथावतीता, सुजसा भवसागरतरणी ।
निगमा निरबानी, दयानिधानी, यह सुबुद्धिदेवी वरणी ॥ ६ ॥

इति श्रीसुमतिदेविशतक.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते.

वस्तु छन्द.

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान ।
मुख ओंकारधुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ॥
रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै ॥
सो सत्यारथ शारदा तासु, भक्ति उर आन ।
छन्द भुजगप्रयातमें, अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात.

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
नमो देविवागेश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला ।
सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला ॥
महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ३ ॥

अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा ।
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥
चिदानन्द-भूपाल की राजधानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ४ ॥

समाधान रूपा अनूपा अक्षुद्रा ।
अनेकान्तधा स्यादवादांकमुद्रा ॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी बखानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा ।
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ॥
महापावनी भावना भव्यमानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥

अतीता अजीता सदा निर्विकारा ।
विषैवाटिकाखंडिनी खड्गधारा ॥
पुरापापविक्षेपकर्तृ कृपाणी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥

अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा ।
अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥

निशंका निरंका चिदंका भवानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ८॥
अशोका मुदेका विवेका विधानी।
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी॥
समस्तावलोका निरस्तानिदानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ९॥

वस्तुछंद

जैनवाणी जैनवाणी सुनहि जे जीव।
जे आगम रुचिधरैं जे प्रतीति मन माहिं आनहि।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि॥
जे हितहेतु "बनारसी" देहिं धर्म उपदेश।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश॥ १०॥

इति शारदाष्टक

अथ नवदुर्गाविधान लिख्यते।

कवित्त.

प्रथमहिं समकितवंत लखि आपापर,
परको स्वरूप त्यागी आप गहलेतु है।
बहुरि विलोक साध्यसाधक अवस्था भेद,
साधक ह्वै सिद्धिपद को सुदृष्टि देतु है॥
अविरतगुणथान आदि छीनमोह अन्त,
नवगुणथान निति साधकको खेतु है॥

संजम चिह्न विना साधक गुपतरूप,
त्यों त्यों परगट ज्यों ज्यों संजम सुचेतु है ॥ १ ॥
जैसै काहू पुरुषको कारण ऊरध पंथ,
कारज स्वरूपी गढ़ भूमिगिरश्रृंग है।
तैसै साध्यपद देव केवल पुरुष लिंग,
साधक सुमति देवीरूप तियलिंग है ॥
ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
व्यवहार भेद देव देवी यह व्यंग है।
ऐसो साध्य साधक स्वरूप सूधो मोखपंथ,
संतनको सत्यारथ मूढ़नको ढिंग है ॥ २ ॥
जाको भौनभवकूप मुकुट विवेकरूप,
अनाचार रासभ आरूढद्युति गूझी है।
जाके एक हाथ परमारथ कलश दूजे,
हाथ त्याग शकति बोहारी विधि बूझी है।
जाके गुणश्रवण विचार यहै वासी भोग,
औपन भगतिरसरागसों अरूझी है ॥
सो है देवी शीतला सुमति सूझै संतनको
दुरबुद्धि लोगनको रोगरूप सूझी है ॥ २ ॥
कूपसों निकस जबभूपर उदोत भई,
तब और ज्योति मुख ऊपर विराजी है।
भुजा भई चौगुणी शकति भई सौगुणी,
लजाय गए औगुणी रजायछिति छाजी है ॥

कुंभसों प्रगट्यो नूर, रासभसों भयो सूर,
सूप भयो छत्रसों बुहारी शत्र राजी है।
ऐपन को रंगसो तो कंचनको अंग भयो,
छत्रपति नामभयो वासी रीति ताजी है॥ ४॥

दोहा।

जाके परसत परमसुख, दरसत दुख मिट जाहिं।
यहै सुमति देवी प्रगट, नगर कोटअटमाहिं॥ ५॥

कवित्त।

यहै बंधबंधकस्वरूप मानबंदी भई
यह है अनंदी चिदानंद अनुसरणी।
यह ध्यान अगनि प्रगट भये ज्वालामुखी,
यहै चंडी मोह महिषासुर निदरणी॥
यहै अष्टभुजी अष्टकर्मकी शकति भंजै,
यहै कालवचनी उलंघै कालकरणी।
यहै अवला बली विराजै त्रिभुवन राणी,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरणी॥ ६॥
यहै कामनाशिनी कमिक्षा कलि में कहावै,
यहै ब्रह्मचारिणी कुमारी है अपरनी।
यह है भगौत यहै दुर्गा दुर्गति जाकी,
यहै छत्रपती पुण्यपापतापहरनी॥
यहै रामरमणी सहजरूप सीता सती,
यहै आदि सुंदरी विवेकसिंहचरनी।

यहै जगमाता अनुकंपारूप देखियत,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ७ ॥

यहै सरस्वती हंसवाहिनी प्रगट रूप,
यहै भवभेदिनी भवानी शंभुघरनी।
यहै ज्ञान लच्छनसों लच्छमी विलोकियत,
यहै गुणरतनभंडार भारभरनी
यहै गंगा त्रिविधि विचारमें त्रिपथ गौनी,
यह मोखसाधन को तीरथ की धरनी।
यहै गोपी यहै राधा राधै भगवान भावै,
यहै देवी सुमति अनेक भांति वरनी ॥ ८ ॥

यहै परमेश्वरी परम ऋद्धि सिद्धि साधै,
यहै जोग माया व्यवहार ढार ढरनी।
यहै पदमावती पदम ज्यों अलेप रहै,
यहै शुद्ध शकति मिथ्यात को कतरनी ॥
यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासन में,
यहै अखडित शिवमहिमा अमरनी।
यहै रसभोगनी वियोग में वियोगिनी है,
यहै देवो सुमति अनेकभांतिवरनी ॥ ६ ॥

॥ इति श्री नवदुर्गा विधान ॥

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते,

दोहा

काहू दिन काहू समय, करुणाभाव समेत।
सुगुरु नामनिर्णय कहै, भविक जीव हितहेत॥ १॥
जीव द्विविधि संसार में, अथिररूप थिररूप।
अथिर देहधारी अलख, थिर भगवान अनूप॥ २॥

कवित्त (३१ वर्ण)

जो है अविनाशी वस्तु ताको अविनाशी नाम,
विनाशीक वस्तु जाको नाम विनाशीक है।
फूल मरै बास जीवै यहै भ्रमरूपी बात,
दोऊ मरै दोऊ जीवै यह बात ठीक है॥
अनादि अनंत भगवंत को सुजस नाम,
भवसिंधु तारण तरण तहकीक है।
अवतरै मरै भी धरै जे फिर फिर देह,
तिनको सुजस नाम अथिर अलीक है॥ ३॥

दोहा

थिर न रहै नर नाम की, जथा कथा जलरेख।
एते पर मिथ्यामती, ममता करैं विशेख॥ ४॥

कवित्त

जग में मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव,
भ्रम के प्रवाह में वहा है आगे वहैगा।

नाम राखिवे को महारभ करै दंभ करै,
यों न जानै दुर्गति में दुःख कौन सहैगा।
बार बार कहैं मोह भागवंत धनवंत,
मेरा नाव जगत में सदाकाल रहैगा।
याही ममता सों गहि आयो है अनंत नाम,
आगें योनियोनि में अनंत नाम गहैगा॥ ५॥

दोहा

बोल उठैं चित च कि नर, सुनत नामकी हांक।
वहै शब्द सतगुरु कहैं, है भ्रमकूप धमांक॥ ६॥

कवित्त

जगत में एक एक जनके अनेक नाम,
एक एक नाम देखिये अनेक जनमें।
वा जनम और या जनम और आगें और,
फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें॥
कोई कलपना कर जोई नाम धरै जाको,
सोई जीव सोई नाम मानैं तिहूँ पन में।
ऐसो विरतंत लख संतसों सुगुरु कहै,
तेरो नाम 'भ्रम' तू विचार देख मन में॥ ७॥

दोहा

नाम अनेक समीप तुव, अंग अंग सब ठौर।
जासों तू अपनो कहै, सो भ्रमरूपी और॥ ८॥

कवित्त

केश शीस भाल भौंह बरुणी पलक नैन,
गोलक कपोल गंड नासा मुख श्रौन है।
अधर दसन ओंठ रसना मसूढ़ा तालु,
घटिका चिबुक कंठ कंधा उर भौन है॥
कांख कटि भुजा कर नाभि कुच पीठ पेट,
अंगुली हथेली नख जंघाथल भौन है।
नितम्ब चरण रोम एते नाम अंगन के,
तामें तू विचार नर तेरा नाम कौन है॥ ६॥

दोहा

नाम रूप नहिं जीवको, नहिं पुद्गल को पिंड।
नहिं स्वभाव संजोग को, प्रगट भरमको मिंड॥ १०॥
यह सुनामनिर्णयकथा कही सुगुरु संछेप।
जे समुझहिं जे सरदहें, ते नीरस निरलेप॥ ११॥

इति श्रीनामनिर्णयविधान

अथ नवरत्नकवित्त लिख्यते

धन्वन्तरि[1] छपणक[2] अमर[3], घटखर्पर[4] वैताल[5]।
बररुचि[6] शंकु[7] बराहमिहर[8] (र). कालिदास[9] नव लाल॥१॥
विमलचित्त[1] जाचक[2] शिथिल[3], मूढ[4] तपस्वी[5] प्रात[6]।
क्रपणबुद्धि[7] तियनरपती[8], ज्ञानवत[9] नव बात॥२॥

छप्पय

विमल चित्तकर मित्र, शत्रु छलबल वश किज्जय।

प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तहिं धन दिज्जय ॥
युवति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय।
महाराज , गुणकथन बंधु समरस सनमानिय ॥
गुरुनमन शीस रससों रसिक, विद्या बल बुधि मन हरिय।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय ॥ ३ ॥

जाचक लघुपत लहै, काम आतुर कलंक पद।
लोभी अपजस लहै, असनलालची लहै गद ॥
उन्नत लहै निपात. दुष्ट परदोष लहै तकि।
कुमन विकलता लहै लहै संशय जु रहै चकि ॥
अपमान लहै निर्धन पुरुष, ज्वार बहु संकट सहै।
जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता लहै ॥ ४ ॥

शिथिल मूल दिढ़ करै, फूल चूंटै जलसींचै।
ऊरध डार नवाय, भूमिगत ऊरध खींचै।
जे मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधारइ।
कूड़ा कंटक गलित पत्र, बाहिर चुन डारइ ॥
लघु वृद्धि करइ भेदै जुगल बाड़ि सँवारै फल भखै।
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै सपति अखै ॥ ५ ॥

मूढ़ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ नर।
नरनायक आलसी, विपुल धनवंत कृपण कर ॥
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अधरम रत।
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेशाहत ॥
रोगी दरिद्रपीड़ित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित।
एते त्रिडम्ब संसारमें, इन सब कहँ धिक्कार नित ॥ ६ ॥

प्रात धर्म चिन्तवै, सहजहित मंत्र विचारै।
चर चलाय चहुं ओर, देशपुर प्रजा सम्हारै॥
राग द्वेष हिय गोप, वचन अमृत सम बोलै।
समय ठौर पहिचान, कठिन कोमल गुण खोलै।
जतन करै संचय रतन, न्यायमित्र अरि सम गनै।
रणमें निशक ह्वै संचरै. सो नरेन्द्र रिपुदल हनै॥ ७॥

कृपण बुद्धि यश हनैं, कोप दृढ़ प्रीति विछोरै।
दंभ विध्वंसै सत्य,क्षुधा मर्यादा तोरै॥
कुव्यसन धन छय करै, विपति थिरता पद टारइ।
मोह मरोरै ज्ञान, विषय शुभ ध्यान विडारइ॥
अभिमान विछेदै विनय गुण, पिशुनकर्म गुरुता गिलै।
कुकलाअभ्यास नासहि सुपथ, दारिदसों आदर टलै॥ ८॥

तियबल योवन समय, साधुबल शिवपथ सवर।
नृपबल तेज प्रताप. दुष्टबल बचन अडम्बर॥
निर्धनबल सुमिलाप, दानिसेवा वाचकबल।
बाणिजबल व्यवहार, ज्ञानबल वरविवेकदल॥
विद्या विनय उदारबल, गुणसमूह प्रभुबल दरव।
परिवार स्वबल सुविचार कर, होहिं एक समता सरब॥

नरपतिमंडर नीति, पुरुषमडन मनधीरज।
पंडितमंडन विनय, तालसरमंडन नीरज॥
कुलतियमंडन लाज, वचनमंडन प्रसन्नमुख।
मतिमंडन कवि धर्म, साधुमंडन समाधिसुख॥

भुजबलसमर्थ मंडन क्षमा, गृहपति मंडन विपुल धन ।
मंडन सिद्धान्त रुचि सन्त कहँ, कायामंडन लवन घन ॥१०॥
ज्ञानवन्त हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै ।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै ॥
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै ।
पंडित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमानै ॥
कुलवंत पुरुष कुलविधितजै, बंधु न मानै बंधुहित ।
सन्यासधार धन संग्रहै, ए जगमें मूरख विदित ॥ ११ ॥

इति श्रीनवरत्न कवित्त.

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

दोहा ।

जलधारा चन्दन पुहुप, अक्षत अरु नैवेद ।
दीप धूप फल अर्घयुत, जिनपूजा वसुभेद ॥१॥
जल-मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह स्वभाव जलमाहिं ।
जलसों जिनपद पूजतें, कृतकलङ्क मिट जाहिं ॥ २ ॥
चन्दन-तप्तवस्तु शीतल करै, चन्दन शीतल आप ।
चन्दनसों जिन पूजतें, मिटै मोह संताप ॥ ३ ॥
पुष्प-पुष्प चापधर पुष्पशर, धारै मनमथ वीर ।
यातें पूजा पुष्पकी, हरै मदनशरपीर ॥ ४ ॥
अक्षत-तन्दुल धवल पवित्र अति, नाम सु अक्षत तास ।

अक्षतसों जिन पूजतें, अक्षय गुणपरकास ॥ ५ ॥

नैवेद्य–परम अन्न नैवेद्य विधि, क्षुधाहरण तन पोष।

जिनपजतें नैवेद्यसों, मिटहिं क्षुधादिक दोष ॥ ६ ॥

दीपक–आपा पर देखै सकल, निशिमें दीपक होत।

दीपकसों जिन पूजतें, निर्मलज्ञानउद्योत ॥७॥

धूप–पावक दहै सुगंधिको, धूप कहावै सोय।

खेवत धूप जिनेशको, कर्म दहन छल होय ॥८॥

फल–जो जैसी करनी करै, सो तैसा फल लेय।

फल पूजा जिनदेवको, निश्चय शिवफल देय ॥९॥

अर्घ–यह जिन पूजा अष्टविधि, कीजे कर शुचि अंग।

प्रतिपूजा जलधारसों, दीजे अर्घ अभंग ॥१०॥

इति अष्टप्रकार जिन पूजन.

अथ दशदानविधान लिख्यते.

गो सुवर्ण दासी भवन, गज तुरंग परधान।

कुलकलत्र तिल भूमि रथ, ये पुनीत दशदान ॥१॥

अब इनको विवरण कहूं, भावितरूप बखानि।

अलखरीति अनुभवकथा, जो समझै सो दानि ॥२॥

चौपाई।

गो कहिये इन्द्री अभिधाना। बछरा उमँग भोग पय पाना॥

जो इसके रसमाहिं न राचा। सो सवच्छ गोदानी साँचा ॥३॥

कनक सुरंग सु अक्षर वानी। तीनों शब्द सुवर्ण कहानी॥
ज्यों त्यागै तीनहुँकी साता। सो कहिये सुवरण को दाता॥४॥
पराधीन पररूप गरासी। यों दुर्बुद्धि कहावै दासी॥
ताकी रीति तजै जब ज्ञाता। तब दासीदातार विख्याता॥५॥
तन मन्दिर चेतन घरवासी। ज्ञान दृष्टि घट अन्तरभासी॥
समझै यह पर है गुण मेरा। मन्दिरदान होहि तिहिं बेरा॥६॥
अष्ट महामद धुरके साथी। ए कुकर्म कुदशाके हाथी॥
इनको त्याग करै जो कोई। गजदातार कहावै सोई॥७॥
मनतुरंग चढ़ ज्ञानी दौरइ। लखै तुरंग औरमैं औरइ॥
निज दृगको निजरूप गहावै। सो तुरंगको दान कहावै॥८॥
अविनाशी कुलके गुण गावै। कुल कलित्र सद्बुद्धि कहावै॥
बुद्धि अतीत धारणा फैली। वहै कलत्रदान की सैली॥९॥
ब्रह्मविलास तेल खलि माया। मिश्रपिंड तिल नाम कहाया॥
पिंडरूप गहि द्विविधा मानी। द्विविधा तजै सोइ तिलदानी॥१०॥
जो व्यवहार अवस्था होई। अन्तरभूमि कहावै सोई॥
तज व्यवहार जो निश्चय मानै। भूमिदानकी विधि सो जानै॥११॥
शुकल ध्यान रथ चढ़ै सयाना। मुक्तिपन्थ को करै पयाना॥
रहै अजोग जोगसों यागी। वहै महारथ रथको त्यागी॥१२॥

ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवशासनमूल।
ज्ञानवन्त सूक्षम गहै, मूढ़ विचारै थूल॥१३॥
ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान।
रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन॥१४॥

इति दशदानविधान.

अथ दश बोल लिख्यते.

चौपाई ।

जिनकी भांति कहौं समुझाई । जिनपद कहा सुनो रे भाई ॥
धर्म स्वरूप कहावै ऐसा । सो जिनधर्म बखानौ जैसा ॥१॥
आगम कहो जिनागम सांचा । वरणों वचन और जिन वाचा ॥
मत भाषहुँ जिनमत समुझावहुं । ये दश बोल जथारथ गावहुं ॥२॥

जिन-दोहा ।

सहज वन्धवंदक रहित, सहित अनन्तचतुष्ट ।
जोगी जोगअतीत मुनि, सो जिन आतम सुष्ट ॥३॥

जिनपद ।

विधि निषेध जानै नहीं, जहँ अखंड रस पान ।
विमल अवस्था जो धरै, सो जिनपद परमान ॥४॥

धर्म ।

लहिये वस्तु अवस्तुमें, यथा अवस्थित जोय ।
जो स्वभाव जामै सधै, धर्म कहावै सोय ॥५॥

जिनधर्म ।

पुरुष प्रमाण परंपरा, वचन बीज विस्तार ।
धरै अर्थकी अगमता, यह आगम की ढार ॥६॥

जिनआगम ।

जहां द्रव्य षट तत्त्व नव, लोकालोक विचार ।
विवरण करै अनंत नय, सो जिन आगम सार ॥७॥

वचन ।

कहुं अक्षर मुद्रा धरै, कहूं अनक्षर धार ।
मृषा सत्य अनुभय उभय, वचन चार परकार ॥८॥

जिनवचन ।

जाकी दशा निरक्षरी, महिमा अक्षर रूप ।
स्यादवादजुत सत्यमय, सो जिनवचन अनूप ॥९॥

मत ।

थापै निजमतकी क्रिया, निन्दै परमत रीति ।
कुलाचारसों बँधि रहै. यह मतकी परतीति ॥१०॥

जिनमत ।

अर्हत् देव सुसाधु गुरु, दया धर्म जहँ होय ।
केवल भाषित रीति जहँ, कहिये जिनमत सोय ॥११॥

इति दशबोल.

अथ पहेली लिख्यते.

कहरानामाकी चाल.

कुमति सुमति दोऊ ब्रजवनिता, दोउको कन्त अवाची ।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासों राची ॥१॥
यह सुबुद्धि आपा परिपूरण, आपापर पहिचानै ।
लख लालनकी चाल चपलता, सौतसाल उर आनै ॥ २ ॥
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली ।
काहू समय पाय सखियनसों, कहै पुनीत पहेली ॥ ३ ॥

मोरे आंगन विरवा उलह्यो, बिना पवन भकुलाई।
ऊंचि डाल बड पात सघनवाँ, छाहँ सौतके जाई॥ ४॥
बोलै सखी बात मैं समुझी, कहूँ अर्थ अब जो है।
तोरे घर अन्तरघटनायक, अदभुत बिरवा सो है॥ ५॥
ऊंची डाल चेतना उद्धत, बड़े पात गुण भारी।
ममता बात गात नहीं परसै, छकनि छाह छत नारी॥ ६॥
उदय स्वभाव पाय पद चचल, यातै इत उत डोलै।
कबहूँ घर कबहूँ घर बाहिर, सहज सरूप कलोलै॥ ७॥
कबहूँ निज संपति आकर्षै, कबहूं परसै माया।
जब तनको त्योंनार करै तब, परै सौति पर छाया॥ ८॥
तोरे हिये डाह यों आवै, हौं कुलान वह चेरी।
कहै सखी सुन दीनदयाली, यहै हियाली तेरी॥ ९॥

दोहा

हिय आंगनमें प्रेम तरु, सुरति डार गुणपात।
मगनरूप ह्वै लहलहै, बिना द्वन्दुखबात॥ १०॥
भरमभाव ग्रीषम भयो, सरस भूमि चितमाहिं।
देश दशा इक सम भई, यहै सौतघर छाहिं॥ ११॥

इति पहेला।

अथ प्रश्नोत्तरदोहा लिख्यते।

प्रश्न—कौन वस्तु वपु माहिं है, कहाँ आवै कहाँ जाय।
ज्ञानप्रकाश कहा लखै, कौन ठौर ठहराय॥ १॥

उत्तर—चिदानंद वपुमाहिं है, भ्रममहिं आवै जाय।
ज्ञान प्रकट आपा लखै, आपमाहिं ठहराय॥ २॥
प्रश्न—जाको खोजत जगत जन, कर कर नानाभेष।
ताहि बतावहु, है कहाँ, जाको नाम अलेष॥ ३॥
उत्तर—जग शोधत कछु औरको, वह तो और न होय।
वह अलेख निरभेष मुनि, खोजन हारा सोय॥ ४॥
प्रश्न—उपजै विनसै थिररहै, वह अविनाशी नाम।
भेदी तुम भारी भला !, मोहि बतावहु ठाम॥ ५॥
उत्तर—उपजै विनसै रूप जड़, वह चिद्रूप अखंड।
जोग जुगति जगमें लसै, बसै पिण्ड ब्रह्मंड॥ ६।
प्रश्न—शब्द अगोचर वस्तु है, कछू कहौं अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहो सुजान॥ ७॥
उत्तर—शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहिं पुनि सोय।
स्यादवाद शैली अगम, विरला बूझै कोय॥ ८॥
प्रश्न—वह अरूप ह्वै रूपमें, दुरिकै कियो दुराव।
जैसैं पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव॥ ९॥
उत्तर—हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहिं।
है अनादि ज्यों खानिमें, कचन पाहनमाहिं॥ १०॥

इति प्रश्नोत्तर दोहा।

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते।

नमत शीस गोविन्दसों, उद्धव पूछत एम,।
कै विधि यम कै विधि नियम, कहो यथावत जेम॥ १॥

समता कैसी दम कहा, कहा तितिक्षा भाव।
धीरज दान जु तप कहा, कहा सुभट विवसाव ॥ २ ॥
कहा सत्यरति है कहा, शौच त्याग धन इष्ट।
यज्ञ दक्षिणा बलि कहा, कहा दया उतकिष्ट ॥ ३ ॥
कहा लाभ विद्या कहा लज्जा लक्ष्मी गूढ़।
सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पंडित को मूढ़ ॥ ४ ॥
पंथ कुपथ कहो कहा, स्वर्ग नरक चितौन।
को बंधव अरु गृह कहा, धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥
कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहिं।
ये सब प्रश्न विचार मन, कही मधुप हरिपाहिं ॥ ६ ॥
नारायण उत्तर कहै, सुन उद्धव मन लाय।
द्वादश यम द्वादश नियम, कहूं तोहि समुझाय ॥ ७ ॥
दया सत्य थिरता क्षमा अभय अचौर्य सुमौन।
लाज असग्रह अस्तिमत, संग त्याग तियवौन ॥ ८ ॥
हरि पूजा संतोष गुरु, भक्ति होम उपकार।
जप तप तीरथ द्विविधि शुचि, श्रद्धा अतिथि अहार ॥९॥

सोरठा।

कहे भेद चौवीस, भिन्न २ यम नियमके।
रहे प्रश्न चौवीस, तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १० ॥

समता ज्ञान सुधारस पीजे। यम इन्द्रिनको निग्रह कीजे ॥
सकटसहन तितिक्षा वीरज। रसना मदन जीतवो धीरज ॥ ११ ॥
दान अभय जहँ दंड न दीजे। तप कामनानिरोध कहीजे ॥
अन्तरविजयसूरता सांची। सत्यब्रह्म दर्शन निरवाची ॥ १२ ॥

रतु अनक्षरी ध्वनि जहँ होई । करम अभाव शौचविध सोई ॥
त्याग परम सन्यास विधाना । परम धरम धन इष्ट निधाना ॥१३॥

ध्रुव धारणा यज्ञकी करनी । हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥
प्राणायाम बोधवल अक्षा । दया अशेष जन्तुकी रक्षा ॥ १४ ॥

लाभ भावशुभगतिपरकाशा । विद्या सो जु अविद्यानाशा ॥
लाज कुकर्म गिलानि कहावै । लक्ष्मी नाम निराशा पावै ॥ १५ ॥

सुखदुखत्यागवुद्धि सुखरेखा । दुख विषयारस भोगविशेखा ॥
पंडित बंध मोक्ष जो जानै । मूरख देहादिक निज मानै ॥ १६ ॥

मारग श्रीमुख आगम भाषा । उतपथ कुधी कुमन अभिलाषा ॥
सुकृतिवासना स्वर्गविलासा । दुरित उछाह नर्क गतिवासा ॥ १७ ॥

बंधव हितू स्वर्ग सुख दाता । गृह मानुषी शरीर विख्याता ॥
धनी सो जु गुणरत्नभंडारी । सदा दरिद्री तृष्णाधारी ॥ १८ ॥

कृपण सो जु विषयारसलोभी । ईश्वर त्रिगुणातीत अक्षोभी ॥
बहुत कहां लगि कहौं विचक्षण । गुण अरु दोष दोहुके लक्षण ॥१६॥

दोहा ।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहावै सोय ।
गुण अरु दोष जहां नहीं, तहां गुन परगट होय ॥ २० ॥
इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धवहरिसंवाद ।
भाषा कहत "बनारसी" 'भानु' सुगुरुपरसाद ॥ २१ ॥

इति प्रश्नोत्तरमालिका ।

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते ।

दोहा ।

चेतनलच्छण नियतनय, सबै जीव इकसार ।
मूढ़ विचच्छण परमसों, त्रिविधि रूप व्यवहार ॥ १ ॥

मूढ़ आतमा एक विधि, त्रिविधि विचच्छण जान ।
द्विविधि भाव परमातमा, षट्विधि जीव बखान ॥ २ ॥

विधि निषेध जानै नहीं, हित अनहित नहीं सूझ ।
विषयमगन तन लीनता, यहै मूढ़की बूझ ॥ ३ ॥

जो जिनभाषित सरदहै, भ्रम संशय सब खोय ।
समकितवंत असंजमी, अधम विचच्छण सोय ॥ ४ ॥

वैरागी त्यागी दमी, स्वपर विवेकी होय ।
देशसंजमी संजमी, मध्यम पंडित दोय ॥ ५ ॥

अप्रमाद गुणथानसों, छीणमोहलों दौर ।
श्रेणिधारणा जो धरै, सो पंडित शिरमौर ॥ ६ ॥

जो केवल पद आचरै, चढ़ि सयोगिगुणथान ।
सो जगम परमातमा, भववासी भगवान ॥ ७ ॥

जिहिंपदमें सबपद मगन, ज्यों जलमें जल बुन्द ।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरदुन्द ॥ ८ ॥

इति अवस्थाष्टक ।

अथ षट्दर्शनाष्टक लिख्यते.

शिवमत बौद्ध रु वेद्मत, नैयायिक मतदच्छ।
मीमांसकमत जैनमत, षटदर्शन परतच्छ ॥ १ ॥

शैवमत ।

देव रुद्र जोगी सुगुरु, आगम शिवमुख भाख।
गनै कालपरयाति धरम, यह शिवमतकी साख ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाधड़ी, जगत वस्तु छिन औध।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत बौध ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेष ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुष, गुरु सन्यासी होय।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायिक मत सोय ॥ ५ ॥

मीमांसकमत ।

देव अलख दरवेश गुरु, मानैं कर्म गिरंथ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमांसक पंथ ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थंकर गुरु यती, आगम केवलि बैन।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७ ॥

ए छहमत छै भेदसों, भये छूट कछु और ।
प्रतिषोडस पाखंडसों, दशा छयानवे और ॥ ८ ॥

इति षट्दर्शनाष्टक.

अथ चातुर्वर्ण्य लिख्यते.

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्म गुणलीन ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै सो 'ब्राह्मण' परवीन ॥ १ ॥
जो निश्चय गुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार ।
जीतै सेना मोहकी, सो 'क्षत्री' भुजभार ॥ २ ॥
जो जानै व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय ।
शुभ करणीसों रम रहै, 'वैश्य' कहावै सोय ॥ ३ ॥
जो मिथ्यामत आदरै; रागद्वेषकी खान ।
विनविवेक करणी करै, शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
चार भेद करतूतिसों, ऊंच नीच कुलनाम ।
और वर्णसंकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्ण्य ।

अथ अजितनाथजी के छंद.

गोयमगणहरपय नमो, सुमरि सुगुरु 'रविचन्द' ।
सरसुति देवि प्रसादलहि, गाऊं अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द.

श्री अवध्यापुर देश सुहायाजी।
राजै तहं जितशत्रू रायाजी॥
राया सुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तसु धरै।
तसु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सूचित अवतरै॥
तव जन्म उत्सव करहिं वासव, मधुर धुनि गावहिं सुरी।
आनन्द त्रिभुवन जन 'बनारसि' धन्य श्रीअवध्यापुरी॥ २॥

महियल राजिड अजित जिनंदाजी।
गज वर लच्छन निर्मल चंदाजी॥
चन्दा उदित इक्ष्वाक वंशहि, कुमति तिमर विनासिये।
सय साठ चार सुचाप परिमित, देह कंचन भासिये॥
दिढ़ पालिराज सु गहिय संजम, मुकति पथ रथ साजियो।
उत्पन्न केवल सुख "बनारसि" अजित महियल राजियो॥ ३॥

गढ़ योजनमहिं रचैं सुदेवाजी।
अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी॥
सेवहिं अशोक प्रसून वरसत, दिव्यधुनि तहं गाजहीं।
चामर सिंहासन प्रभामण्डल छत्र तीन विराजहीं॥
नवदेव दुंदभि सभा बारह, चौतिसौं अतिशय सही।
सुर असुर किन्नरगण 'बनारसि' रचित गढ़ योजन मही॥ ४॥

लक्ष बहत्तरि पूरव आया जी।
भोग सु जिनवर शिवपद पायाजी॥
शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो।
वरणो शिषैराबाद मंडन, भविक जनमनरंजनो॥

सोलैसै सत्तर समय आश्विन, मास सितपख बारसी ।
विनवत दुहू कर जोर सेवक, सिरीमाल 'वनारसि' ॥ ५ ॥

इति श्रीअजितनाथ के छन्द.

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति.

वाकीमहम्मद खान के चंदवाकी ढाल ।

सहि एरी ! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नाहिं घरे ।
सहि एरी ! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे ॥
चन्द जिवां मेरा वल्लभ सोहै, नैन चकोरहिं सुक्ख करै ।
जगज्योति सुहाई कीरतिछाई, बहु दुख तिमरवितान हरै ॥
सहु कालविनानी अम्रतवानी, अरु मृगका लांछन कहिए ।
श्रीशान्ति जिनेशनरोत्तमको प्रभु, आज मिला मेरी सहिए ! ॥१॥
सहि एरी ! तू परम सयानो सुरज्ञानी रानी राजत्रिया ।
सहि एरी ! तू अति सुकुमारी, वरन्यारी प्यारी प्राणप्रिया ॥
प्राणप्रिया लखि रूप अचंभा, रति रंभा मन लाज रहीं ।
कलधौत कुरंग कौँल करि केसरि, ये सरि तोहि न होंहि कहीं ॥
अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहिं लहिये ।
मिलि या तुझ कन्त नरोत्तमको प्रभु, धन्य सयानी सहिये ! ॥२॥

दोहा ।

विश्वसेन कुलकमलरवि, अचिरा उर अवतार ।
धनुष सु चालिस कनकतन, वन्दहुँ शान्ति कुमार ॥३ ॥

त्रिभगी छन्द. (१०, ८, ८, ६)

गजपुर अवतारं, शान्ति कुमारं, शिवदातारं, सुखकारं।
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमारं ॥
कृतअरिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं, जगसारं।
परहित संसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्तारं, शिवधारं ॥ ४ ॥

सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश।
तिनिगणवन्दित चरणजुग, वन्दहुं शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥

श्रीशान्तिजिनेशं जगतमहेशं, विगतकलेशं भद्रेशं।
भविकमलदिनेश, मतिमहिशेशं, मदनमहेशं, परमेशं ॥
जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं चक्रेशं।
भवजलपोतेशं, महिमनगेशं, निरुपमवेशं, तीर्थेशं ॥ ६ ॥

करत अमरनरमधुप जसु, वचन सुधारसपान !
वन्दहुं शान्तिजिनेशवर, वदन निशेश समान ॥ ७ ॥

वररूप अमानं, अरितभभानं, निरुपमज्ञानं, गतमानं।
गुणनिकरस्थान. मुक्तिवितानं, लोकनिदानं, सध्यानं ॥
भवतारनयानं. कृपानिधान, जगतप्रधानं, मतिमान।
प्रगटितकल्यानं, वरमहिमानं, शिवपददानं, मृगजानं ॥८॥

भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल।
वन्दहुं शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ९ ॥

भजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्तिविशालं, जनपालं।
गतिविजितमराल, अरिकुलकालं, वचनरसालं, वरभालं ॥
मुनिजलजमृणालं, भवभयशालं, शिवउरमालं, सुकुमालं।

भवितरुषतमालं, त्रिभुवनपालं, नयनविशालं गुणमालं ॥ १० ॥

कलश-छप्पय ।

हीर हिमालय हंस, कुन्द शरदभ्र निशाकर ।

कीर्तिकान्तिविस्तार, सार गुणगणरत्नाकर ॥

दुःकृति संतति धाम, कामविद्रूषिविदारण ।

मानमतंगजसिंह, मोहतरुदलन सुवारण ॥

श्रीशान्तिदेव जय जितमदन, 'बनारसि' बन्दत चरण ।

भवतापहारिहिमकर वदन, शान्तिदेव जय जितकरण ॥ ११ ॥

इति श्रीशान्तिनाथ जिनस्तुति.

अथ नवसेनाविधान लिख्यते.

वेसरी छन्द

प्रथमहिं पत्ति नाम दल लेन । तासों त्रिगुण कहावै सेन ॥

सेन त्रिगुण सेनामुख ठीक । सेनामुखसों त्रिगुण अनीक ॥ १ ॥

कीजे त्रिगुण बाहिनी सोइ । वाहनि त्रिगुण चमूदल होइ ॥

त्रिगुण वरूथनि दल परचंड । तासों त्रिगुण कहावै दंड ॥ २ ॥

दोहा ।

दंड कटक दशगुण करहु, तब अछौहिणी जान ।

हयगय रथ पायक सहित, ये तब कटक बखान ॥ ३ ॥

पत्ति ।

एक मतंगज एक रथ, तीन तुरंग प्रधान ।

सुभट पंच पाय सहित, पत्ति कटक परवान ॥ ४ ॥

सेना । चौपाई.

नव तुरंग रथ तीन सुभायक । हस्ती तीन पंचदश पायक ।
बल चतुरंग और नहिं लेन । यह परवान कहावै सेन ॥ ५ ॥

सेनामुख ।

सत्ताइस घौड़े नव हाथी । पैंतालिस पायकनर साथी ।
नवरथ सहित कटक जो होई । दल सेनामुख कहिये साई ॥ ६ ॥

अनीकनी ।

मत्त मतंग सात अरु बीस । पवन वेग रथ सत्ताईस ।
अनुग एकसौ पैंतिस ठीक । हय इक्यासी सहित अनीक ॥ ७ ॥

वाहिनी । आभानक छन्द ।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने ।
इक्यासी परमान महारथ राजने ॥
तीन अधिक चालीस तुरंगम दोयसो ।
अनुग चारसौपंच वाहिनी होय सो ॥ ८ ॥

चमू । गीता छन्द ।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल ।
है सातसो उन्तीस परमित, जातिवन्त रसाल ॥
जहँ सुभट बारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पंच ।
सो चमूदल चतुरंग शोभित, सहित नर तिरजच ॥ ९ ॥

विरूथिनी ।

रथ सातसै उनतीस कुंजर, सातसै उनतीस ।
हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥
छत्तीससौ बलवंत पायक, अधिक पैंतालीस ।
सो है बरूथनि कटक दुद्धर, चटक सुन्दर दीस ॥ १० ॥

दंड-रोला।

कुंजर दोय हजार एक सौ असी सात गनि।
जेते गज तेते प्रमान रथराज रहे बनि॥
नवसौ पैतिस दसहजार पायक प्रचंड वल।
पैसठसै इकसठ तुरंग यह दंड नाम दल॥११॥

अक्षौहिणी-छापय।

गज इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर गज्जहिं।
रथ इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर सज्जहिं॥
एक लाख अरु नवहजार, नर सुभट सुभायक।
तिस ऊपर तीनसौ अधिक पंचास सुपायक।

ौहत तुरंग पैसठ सहस,
छसौ अधिक और लिय।
इहिविधि अभंग चतुरंग दल,
अक्षौहिणी प्रमाण किय॥ १२॥

इति नवसेना विधान

अथ नाटक समयसारसिद्धान्त के पाठान्तर कलशोंका भाषानुवाद

मनहर।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक,
दूसरो न और मैं ही करता करम को।
अन्तर विवेक आयो आपापर भेद पायो,
भयो बोध गयो मिट भारत भरम को॥
भासे छहू द्रव्यनके गुण परजाय सब,
नाशे दुख लख्यो मुख पूरण परमको।
करमको करतार मान्यो पुद्गल पिंड,
आप करतार भयो आतम धरमको॥ १॥

दोहा।

जीव चेतना संजुगत, सदाकाल सब ठौर।
तातैं चेतनभावको, कर्ता जीव न और॥ २॥

गीतिका

जे पूर्वकर्मउदयविषयरस,
भोगमगन सदा रहैं।
आगम विषयसुख भोग वांछहि,
ते न पंचमगति लहैं॥

जिस हिये केवल वृक्ष अंकुर,
शुद्ध अनुभव दीप है।
किरिया सकल तज होहिं समरस,
तिनहिं मोक्ष समीप है ॥ ३ ॥

कोऊ विचक्षण कहै मो हिय,
शुद्ध अनुभव सोहये ।
मैं भावि नय परिमाण निर्मल,
नि रा शी नि र मो ह ये ॥
समध्यान देवल माहि केवल,
देव परगट भासहीं ।
कर 'अष्टयोग' विभावपरिणति,
अष्ट कर्म विनाशहीं ॥ ४ ॥

इति नाटक कलश भाषानुवाद

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

मनहर।

पूरव कि पश्चिम हो उत्तर कि दक्षिण हो,

दिशि हो कि विदिश कहउ तहां धाइये।

पढ़िये पढ़ाइये कि गढ़िये गढ़ाइये कि,

नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥

न्हाये विन खाइये कि न्हायकर खाइये कि,

खाय कर न्हाइये कि न्हाइये न खाइये।

जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,

जिहि विधि जाने जाहु सो विधि बताइये ॥१॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगत की मरजाद,

पढ़िये शवद गढ़िये सु जड़ साज है।

नाचिये सुचित्त चपलाय गाइये सुधुनि,

न्हाइये सुजन शुचि खाइये सुनाज है ॥

परको संजोग सुतो योग विषै स्वाद भोग,

दीजे लीजे मायासो तो भरम को काज है।

इनतें अतीत कोऊ चेतनको पुंज तोमें,
ताके रूप जानवेको जानबो इलाज है ॥ २ ॥
लोभवन्त मानुष जो औगुण अनन्त तामें,
जाके हिये दुष्टता सो पापी परधीन है।
जाके मुख सत्यवानी सोई तपको निधानी,
जाकी मनसा पवित्र सो तीरथथान है ॥
जामें सज्जनकी रीति ताकी सबहीसों प्रीति,
जाकी भली महिमा सो आभरणवान है।
जामें है सुविद्या सिद्धि ताही के अटूटऋद्धि,
जाको अपजस सो तो मृतक समान है ॥ ३ ॥
कंचनभंडार पाय रंच न मगन हूजे,
पाय नवयोवना न हूजे जोबनारसी।
काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
कामिनी कनक मुद्रा दुहुंको बनारसी ॥
दोऊ विनाशी सदीव तूहै अविनाशी जीव,
या जगत कूपबीच ये ही डोबनारसी।
इनको तू संगत्याग कूपसों निकसि भाग,
प्राणी मेरे कहे लाग कहत 'बनारसी' ॥ ४ ॥

(पादान्तयमक)

जीवके बधैया बामविद्याके सवैया दावा-
नलके दधैया बन आखेटक करमी।
जुआरी लबार परधन के हरनहार,

चौरीके करनहार द्यारीके अशरमी ॥
मांस के भखैया सुरापान के चखैया,
परवधूके लखैया जिनके हिये न नरमी ।
रोषके गहैया परदोषके कहैया येते,
पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥ ५ ॥

मत्तगयन्द ।

सम्यक ज्ञान नहीं उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनावैं ।
मौन तजें वनवास गहें मुख, मौन रहें तपसों तन जावें ॥
जोग अजोग कछू न विचारत मूरख लोगन को भरमावें ।
फैल करे वहु जैन कथा कहि, बैन विना नर जैन कहावें ॥ ६ ॥

धीरज तात क्षमा जननी परमारथ मीत महारुचि मासी ।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी ॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी ।
भाव कुटुंब सदा जिनके ढिग, यों मुनिको कहिये गृहवासी ॥ ७ ॥

मनहर ।

मानुष जनम लह्यो सम्यक दरश गह्यो,
अजहूँ विषै विलास त्याग मन बावरे ।
संपति विपति आये हरष विषाद छोड़,
ताही ओर पीठ ओढ़ जैसी बहै बावरे ॥
भौथिति निकट आई समता सुथाह पाई,
गयो है निघटि जल मिथ्यात डुबावरे ।
टूटैगो करम फाम छूटैगो जगत वास,

केवल उदै समीप आयो परेबा वरे ॥ ८ ॥

(पादान्तयमक)

जामें सदा उतपात रोगनसों छीजै गात,
कछू न उपाय छिन छिन आयु खपनो ।
कीजे बहु पाप औ नरक दुख चिन्ता व्याप,
आपदा कलाप में विलाप ताप तपनो ॥
जामें परिगहको विषाद मिथ्या बकवाद,
विषैभोग सुखको सवाद जैसो सपनो ।
ऐसो है जगतवास जैसो चपला विलास
तामें तू मगन भयौ त्याग धर्म अपनो ॥ ९ ॥

मत्तगयंद ।

पुण्य सँजोग जुरे रथ पायक, माते मतंग तुरंग तबेले ।
मान विभौ अँग यो सिरभार, कियो विस्तार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाय करी थिति पूरण, अंत चले उठ आप अकेले ।
हारि हमालकी पोटसी डारिके, और दिवारकी ओट व्है खेले ॥१०॥

छप्पय

धान यान मिष्टान, मोम मादक नवनिज्जै ।
लवण हिंगु घृत तैल, वनिजकारण नहिं लिज्जै ॥
पशुभाड़ा पशुवणिज, शस्त्र विक्रय न करिज्जै ।
जहां निरन्तर अग्नि करम, सो वणिज न किज्जै ॥
मधु नील लाख विष वणिज तज, कूप तलाव न सोखिये ।
लहिये न धरम गृह वासबस, हिंसक जीव न पोखिये ॥ ११ ॥

मुकताको स्वामी चन्द मूंगानाथ महीनन्द,
गोमेदक राजा राहु लीलापति शनी है।
केतु लहसुनी सुरपुष्प राग देव गुरु,
पन्नाको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है॥
याही क्रम कीजे घेर दच्छिणावरत फेर,
माणिक सुमेरवीच प्रभु दिन मनी है।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठोर
कोलकेसे रूप नौ गृही अनूप बनी है॥ १२॥

बालक दशाकी मरजाद दश वरस लों,
बीस लों बढ़ति तीसलों सुछबि रही है॥
चालीस लों चतुराई पंचास लों थूलताई,
साठ लग लोचनकी दृष्टि लहलही है॥
सत्तर लों श्रवण असी लों पुरुषत्व निन्या-
नवे लग इंद्रिनकी शकति उमही है।
सोलों चित चेत एक सौ दशोत्तरलों आयु,
मानुष जनम ताकी पूरीथिति कही है॥ १३॥

चौदह विद्याओंके नाम यथा—

छप्पय।

ब्रह्मज्ञान चातुरीवान, विद्या हय वाहन।
परम धरम उपदेश, बाहुबल जल अवगाहन॥
सिद्ध रसायन करन, साधि सतमसुर गावन।
वर सांगीत प्रमान, नृत्य वाजित्र बजावान॥

व्याकरण पाठ मुख वेद धुनि, ज्योतिष चक्र विचारचित ।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दशचार मित ॥ १४ ॥

छत्तीस पौन (जाति) के नाम कवित्त.

शोसगर दरजी तंबोली रंगवाल ग्वाल,
बढ़ई संगतरास तेली धोबी धुनियाँ ।
कदोई कहार काछी कुलाल कलाल माली,
कुंदीगर कागदी किसान पटबुनियाँ ॥
चितेरा बिंधेरा वारी लखेरा ठठेरा राज,
पटुवा छप्परबंध नाई भारभुनियाँ ।
सुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर,
धीवर चमार एही छत्तीस पवुनियाँ ॥ १५ ॥

एक सौ अड़तालीस प्रकृति
वस्तु छन्द.

सत्तवुट्टहि सत्तवुट्टहि तुरीय गुण थान ।
तहं तीन व्युच्छतिभई नवठाण छत्तीस जानहु ।
दशमें पुनि इक लोभ वारमें सोलह खिपानहु ।
बहत्तर तेरम नसै, तेरह चौदम एवि ।
एम पैड़ि अड़ताल सौ, होय सिद्ध तोडेवि ॥ १६ ॥

छप्पय ।

एक जान द्वै तोरि, तीन रम चार न भासहु ।
पंच जीत षटराख, सात तज आठ विनाशहु ॥
नव संभारि दश धारि, ग्य रमहिं बारह भावहु ।

तेरह तिर चौदहें चढ़त, पन्द्रह विलगावहु ॥
सोलहन मेटि सत्रह भजहु, अट्ठारह कहं करहु छय ।
सम गणि उनीस वीसहिं विरंचि, 'बानारसि' आनंद मय ॥१७॥

तात्पर्य—दोहा ।

शुद्ध आतमा एक जिन, राग द्वेष द्वय बंध ।
तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विकथा धंध ॥ १८ ॥
प्रबल पंच इन्द्री सुभट, षट विधि जीवनिकाय ।
जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥
ब्रह्मचर्य्य की वाड़ि नव, दश मुनिधर्मविचार ।
ग्यारह प्रतिमा श्रावकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥
तेरह थानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ ।
पन्द्रह जोग शरीर के, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥
सत्रह विधि संयम सही, जीव समास उनीस ।
दोष अठारह जान सब, पुद्गलके गुण वीस ॥ २२ ॥

इति प्रस्ताविक फुटकर कविता.

अथ गोरखनाथ के वचन

चौपाई ।

जो भग देख भामिनी मानै । लिङ्ग देख जो पुरुष प्रमानै ॥
जो विन चिह्न नपुंसक जोवा । कह गोरख तीनों घर खोवा ॥१॥
जो घर त्याग कहावे जोगी । घरवासीको कहैं जु भोगी ।
अन्तरभाव न परखै जोई । गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २ ॥

पढ़ ग्रन्थहिं जो ज्ञान बखानै। पवन साध परमारथ मानै।
परम तत्त्व के होहिं न मरमी। कह गोरख सो महा अधर्मी ॥३॥
माया जोर कहै मैं ठाकर। माया गये कहावै चाकर।
माया त्याग होय जो दानी। कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥ ४ ॥
कोमल पिंड कहावै चेला। कठिन पिंडसों ठेला पेला।
जूना पिंड कहावै बूढ़ा। कह गोरख ए तीनों मूढ़ा ॥ ५ ॥
विन परिचय जो वस्तु विचारै। ध्यान अग्नि विनतन परजारै।
ज्ञानमगन विन रहै अबोला। कह गोरख सो बाला भोला ॥ ६ ॥
सुनरे बाचा चुनियाँ मुनियाँ। उलट बेषसों उलटी दुनियां।
सतगुरु कहै सहजका धंधा। वाद विवाद करै सो अंधा ॥ ७ ॥

इति गोरखनाथ के वचन.

अथ वैद्य आदि के भेद.

वैद्यलक्षण

कर्म रोगकी प्रकृती पावै। यथायोग्य औषधि फरमावै।
उदय नाड़िकाकी गति जानै। सो सुवैद्य मेरे मन मानै ॥ १ ॥

ज्योतिषीलक्षण.

नवरस रूप गिरह पहिचानै। बारह राशि भावना भानै ॥
सहज संक्रमण साधै जोई। ज्योतिपराय ज्योतिषी सोई ॥ २ ॥

वैष्णवलक्षण दोहा।

तिलक तोप माला विरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लक्षणसों वैष्णव, समुझै हरि परताप ॥ ३ ॥

जो हरि घट में हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैषणव सोइ ॥ ४ ॥

मुसलमानलक्षण.

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होय।
ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोय ॥ ५ ।

गहव्वर लक्षण.

जो मन लावे भरमसों, परम प्राप्ति कहँ खोय।
जहँ विवेकको वर गयो, गवर कहावै सोय ॥ ६ ।

एक रूप 'हिन्दू तुरुक' दूजी दशा न कोय।
मनकी द्विविधा मानकर, भये एकसों दोय ॥ ७ ॥

दोऊ भूले भरम में, करें वचनकी टेक।
'राम राम' हिन्दू कहैं, तुर्क 'सलामालेक' ॥ ८ ॥

इनके पुस्तक बांचिये, वेहू पढ़े कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे 'शोभा' 'जेव' ॥ ९ ॥

तिनको द्विविधा-जे लखें, रंग विरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिये, घट घट अन्तर राम ॥ १० ॥

यहै गुप्त यह है प्रगट, यह वाहिर यह माहिं।
जब लग यह कछु है रहा, तब लग यह कछु नाहिं ॥११॥

ब्रह्मज्ञान आकाश में, उड़हिं सुमति खग होय।
यथाशक्ति उद्यम करहिं, पार न पावहिं कोय ॥ १२ ॥

गई वस्तु सोचै नहीं, आगम चिंता नाहिं।
वर्त्तमान वरतै सदा, सो ज्ञाता जगमाहिं ॥ १३ ॥

जो विलसै सुख संपदा, गये ताहि दुख होय।
जो धरती बहु तृणवती, जरै अग्निसों सोय ॥ १४ ॥
धन पाये मन लहलहै, गये करै चित शोक।
भोजन कर केहरि लखै, वररुचि केसो बोक ॥ १५ ॥
माया छाया एक है, घटै बढै छिनमाहिं।
इनकी संगति जे लगैं, तिनहिं कही सुख नाहिं ॥ १६ ॥
जे मायासों राचिके, मनमें राखहिं बोझ।
कै तो तिनसों 'खर' भलो, कै जंगलको 'रोझ' ॥ १७ ॥
इस माया के कारणै, जेर कटावहिं सीस।
ते मूरख क्यों कर सकैं, हरिभक्तनकी रीस ॥ १८ ॥
लोभ मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह।
मूल अजीरण व्याधिको, मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥
जैसी मति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहिं।
पशु मूरख भूपर चलहिं, खग पंडित नभमाहिं ॥ २० ॥
सम्यकदृष्टी कुक्रिया, करै न अपने वश्य।
पूरव कर्म उदोत ह्वै, रस दे जाहिं अवश्य ॥ २१ ॥
जो महंत ह्वै ज्ञानविन, फिरै फुलाये गाल।
आप मत्त औरन करै, सो कलिमाहिं कलाल ॥ २२ ॥
ज्यों पावक विन नहिं सरै, करै यदपि पुर दाह।
त्यों अपराधी मित्रकी, होय सबनको चाह ॥ २३ ॥
कर्त्ता जीव सदीव है, करै कर्म स्वयमेव।
यह तन कृत्रिम देहरा, तामें चेतन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहिं कर्त्ता विन प्रेम।
देह अकृत्रिम देहरा, देव निरंजन एम ॥ २५ ॥
भूमि थान धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार।
शयनासन चौपद द्विपद, परिगह दश परकार ॥ २६ ॥
खान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीस।
ये षट कर्म सबहिं करे, राजा रंक सरीस ॥ २७ ॥
उचित वसन सुरुचित असन, सलिल पान सुख सैन।
बड़ी नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैन ॥ २८ ॥

चतुर्दश नियम

विगै दरव तंबोल पट, शील सचित्त स्नान।
दिशि अहार पान रु पुहुप, सयन विलेपन यान ॥ २९ ॥
शीलवन्त मंडै न तन, अधि पद गहै न संत।
पिताजात न हनें पिता, सती न मारहि कंत ॥ ३० ॥
कामी तन मंडन करै, दुष्ट गहै अधिकार।
जारजात मारहि पिता, असति हनें भरतार ॥ ३१ ॥
ज्ञानहीन करणी करै, यों निजमन आमोद।
ज्यों छेरी निज खुरहितैं, छुरी निकासै खोद ॥ ३२ ॥
राजऋद्धि सुख भोगवें, ऐसे मूढ़ अजान।
महा सन्निपाती करहि, जैसे शरवत पान ॥ ३३ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग।
सतगुरु विन भागैं नहीं, दोऊ जालिम रोग ॥ ३४ ॥
जे आशाके दास ते, पुरुष जगत के दास।

आशा दासी जास की, जगत दास है तास ॥ ३५ ॥
संसारी उद्धार तज, धरै रोक पर प्यार ।
ज्ञानी रोक न आदरै, करै दरब उद्धार ॥ ३६ ॥
कारण काज न जो लखै, भेद अभेद न जान ।
वस्तुरूप समुझै नहीं, सो मूरख परधान ॥ ३७ ॥
देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार ।
सांचे लीजे परखिके, झूठे दीजे डार ॥ ३८ ॥
अठारहदूषणरहित, देव सुगुरु निरग्रंथ ।
धर्म दया पूरवअपर, मतअविरोधि सुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
सुनिकै वाणी जैनकी, जैन धरै मन ठीक ।
जैनधर्म बिन जीवकी, जै न होय तहकीक ॥ ४० ॥
उपजै उर सन्तुष्टता, दृग दुष्टता न होय ।
मिटै मोहमदपुष्टता, सहज सुष्टता सोय ॥ ४१ ॥

इति वैद्यलक्षणादि प्रस्ताविक कविता

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते ।

एक जीवद्रव्य ताके अनत गुण अनन्त पर्य्याय एक एक गुणके असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशनिविषै अनन्त कर्मवर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु. एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनंत पर्य्यायसहित विराजमान. यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था. याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने. एक जीव द्रव्य

अनंत अनंत पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने। ताको व्यौरौ,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति; अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्यकी परनति ताको व्यौरौ—

एक जीवद्रव्य जा भांतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप परिनमैं सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। वाकी और भांति। आहीभांति अनंतानंत स्वरूप जीव द्रव्य अनन्तानंत स्वरूप अवस्थालिये वर्त्तहिं। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य औरस्यौ मिलइ नाहीं। याही भांति एक पुद्गल परवानू एक समयमाहिं जा भांतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परवानू द्रव्यसौं मिलै नाहीं. तातै पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेत्रावगाही अनादिकालके, तामैं विशेष इतनौ जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवानू द्रव्य अनतानंत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनंताकार परिनमनरूप बंधमुक्तिशक्ति लिये वर्त्तहिं।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामै तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी जीवद्रव्यकी। संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहूं अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य।

अशुद्धनिश्चय द्रव्यकौं सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यकौं सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकौ सहकारी शुद्धव्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनौ जु यावत्काल संसारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिये सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातैं जु ससार व्यवहार एक रूप दिखायौ. संसारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो संसारी।

अब तीनहू अवस्था को विवरण लिख्यते।

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकस्यौं द्वादशम गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नाहीं जानतौ तातै परस्वरूप विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध-व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनौ कार्य नाहीं मानतौ संतौ. जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है, ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यात-चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातै शुद्धव्यवहारी कहिए. जोगारूढ़ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए।

शुद्धव्यवहारकी सरहद त्रयोदशम गुनस्थाकसौं लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंत जानना। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।

अथ तीनहू व्यवहारको स्वरूप कहै हैं —

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। परन्तु विशेष इनको इतनौ जु कोऊ कहै कि-शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहूविषै छतौ है. उहां भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यौं नाहीं-जातैं संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्था के मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है तातैं सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्तः।

अथ आगमअध्यातमको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यातम कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरौ—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताकौ व्यौरौ कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम भावरूप पुद्गलाकारआत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम-ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम-भावरूप ज्ञानदर्शन सुख-वीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यातम दुहु पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनंन्तता कहा ताको विचार—

अनंतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसै— वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजै. ताको विचार दीर्घ दृष्टिसौं कीजै तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है. सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वामैं वास्तवरूप छतो है. अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसंयुक्त है फल फलविषै अनेक बीज होंइ। या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। भी और सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषैं बीज हैं ते ते अंतर्गर्भित वटवृक्षसंयुक्त होंहिं। याहो भांति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजै तौ भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भांति अनंतताको स्वरूप जाननौ। ता अनंतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै—अनन्तको और अंत है ही नाहीं जो ज्ञानविषै भाषै। तातैं अनन्तता अनन्तहीरूप प्रतिभासै, या भांति आगम अध्यातमकी अनन्तता जाननी. तामैं विशेष इतनौ जु अध्यातमकौ स्वरूप अनन्त आगमको स्वरूप अनन्तानंतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित। आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहूंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने।

मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेतैं यातैं जु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके बलकरि आगम अध्यातमको स्वरूप उपदेश-मात्र कहै परन्तु आगम अध्यातमको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नहीं। तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ तथाज्ञानी जीवको विशेषपणौ और भी सुनो,—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातै सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम अग एकान्तपनौ साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै अध्यात्म अंगको व्यवहारै न जानै यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भांति सूझै काहेतैं?—यातैं—जू आगम अंग बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतौ सतौ आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सौ अंतर-दृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टि के अभावसौ अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी जीव मोक्ष-माग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यक्दृष्टीको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो—जैसैं च्यार पुरुष काहु एक स्थानक विषै ठाढे। तिन्ह च्यारिहू के आगे एक सीपको खंड किनही और पुरुषनै आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतैं प्रश्न कीनी कि यह कहा है सीप

है कै रूपौ है. प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो-कछु सुध नाहीन परत, किधौ सीप है किधौ रूपो है मोरी दिष्टिविषै याको निरधार होत नाहिनै। भी दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि-कछू मोहि यह सुधि नाहीं कि तुम सीप कौनसौं कहतु है रूपौ कौनसौं कहतु है मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाहीं तातैं हम नांहिनै जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाही गहलरूपसौ। भी तीसरो पुरुष विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तौ प्रत्यक्षप्रमानरूपो है याको सीप कौन कहै मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनौं पुरुष तौ वा सीपको स्वरूप जान्यौ नाहीं। तातै तीनों मिथ्यावादी। अब चोथौ पुरुष बोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमान सीपको खंड है यामैं कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमान भ्रामक अथवा अंध. तैसें सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषै न संसै न विमोह न विभ्रम यथार्थदृष्टि है तातैं सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि कर मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं. अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग साधै सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचौ। मोक्षमार्गको साधिवोय है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसैं निश्चय व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै मूढजीव न जानैन मानै। मूढ जीव बंधपद्धतिका साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नांहीं। काहेतैं यातैं जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाहीं। ज्ञाता जब कदाचित् बंधपद्धति विचारै तव जानै कि या-पद्धतिसौं मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धतिसौं मोह

तौरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी त्यों हे नर काहे करौ ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै । यह ज्ञाताको आचार, याहींको नाम मिश्रव्यवहार ॥

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते—

हेय-त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय-विचाररूप अन्यषटद्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरन रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरौ—गुणस्थानक प्रमान हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुनस्थानककी बढ़वारी कही है. गुनस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमान क्रिया। तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होंहिं तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाहीं। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परंतु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै काहेतैं अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है। ज्ञानको परसत्तावलंबी परमार्थता न कहै। जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होंहि। तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर।

न कर्त्ता न भोक्ता न अवलंबी तातै कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होंहि सर्वथा तौ फलानौ गुनस्थानक कहिये सो झूठो। तिनि द्रव्यकौ स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यौ नाहीं। काहेतैं—यातै जु और गुनस्थानकनिकी कौन बात चलावै केवलीके भी उदीक-भावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाहीं। काहू केवलीकौं दंड कपाटरूप क्रिया उदै होय काहू केवली कौ नाहीं। तौ केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुनस्थानककी कौन बात चलावै। तातैं उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाहीं ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति ज्ञायक प्रमान ज्ञान स्वरूपाचरनरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनौ। इन बातनको व्यौरो कहातांई लिखिये, कहांतांई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिठ्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगा नहीं यह—वचनिका यथाका यथा सुमति-प्रवान केवलिवचनानुसारी है। जो याहिसुणैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थवचनिका

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताकौ व्यौरौ—निमित्त तौ संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी

सहज शक्ति। ताको ब्यौरो — एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको ब्यौरो-द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पनां. ताकी चौभंगी. प्रथम ही गुनभेद कल्पनाकी चौभंगीको विस्तार कहौं सो कैसै,—ऐसैं-सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुन, सब गुन असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामै दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभंगीको विचार एक तौ जीवकौ ज्ञानगुन दूसरो जीवको चारित्रगुन।

ए दोनौ गुण शुद्धरूप भाव जानने। अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको ब्यौरो—इन दुहूँकी गति शक्ति न्यारी २ न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताकौ ब्यौरौं,-ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परंतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको ब्यौरौ कहै हैं;—संकलेस विशुद्धरूप गति; थिरता अथिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति; द्रव्यप्रमाण सत्ता। परंतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशमं गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पंचमगुणस्थानक पर्यन्त। यह तौ दुहुकौ गुण भेद न्यारा न्यारौ कियौ। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा बंध।

अथ चौभगीको विचार—ज्ञानगुन निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको व्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको व्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देइकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी वात नाहीं चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान संकलेस रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान संकलेस चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, सकलेस-रूप गति चारित्रकी तासमैं निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू-समैं अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समैं जानरूप ज्ञान संकलेसरूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहूं समैं जानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताकौ व्यौरौ—जान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिए। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये अब ताकौ विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समैं जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसौ जानतु है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसौं न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण। हौं मरूंगो ए इहां ही रहैंगे सो जानतु है। अथवा ए जाहिंगे,

हौं रहूंगो, कोई काल इन्हस्यौं मोहि एक दिन विजोग है ऐसो जानपनौं मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए. परन्तु सम्यक् शुद्धता नाहीं गर्भितशुद्धता जब वस्तुकौ स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रंथिभेद विना होई नाहीं परंतु गर्भित शुद्धता सौ भी अकाम निर्जरा है याही जीवको काहू समैं ज्ञान गुण अज्ञान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बंध है. याही भांति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समे चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातैं चारित्रा-वर्ण कर्म मंद है। ता मंदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण संकलेशरूप है तातैं केवल तीव्रबंध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जासमै जानरूप ज्ञान है और विशुतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समैं अजानरूप ज्ञान है संकलेस रूप चारित्र है तासमैं बंध है तामैं विशेष इतनो जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातैं मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसैं—काहू पुरुषकौं नफो थोड़ो टोटौ बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परंतु बंध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाहीं। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यौं व्यवहारराशि कौनके बल आवतो? उहां तौ ज्ञान गुन अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातै ज्ञानगुनको तौ बल नाहीं। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है. जीवद्रव्यविषै कषाइकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। याही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो—

जानपनौ ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गा-नुसारी है तातै दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनौ जु गर्भित शुद्धता प्रकट शुद्धता नाहीं। इन दुहूं गुणकी गर्भित शुद्धता जबतांई ग्रंथिभेद होय नाहीं तबतांई मोक्षमार्ग नसधै। परन्तु ऊरध-ताको करहि अवश्य करि हो। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रंथिभेद होइ तब इन दुहूंकी शिखा फूटै तब दोऊं गुन धारा-प्रवाहरूप मोक्षमार्गको चलहिं ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि। चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुन निर्मल होइ। वह केवल ज्ञानको अंकूर, वह जथाख्यातचारित्रको अंकूर।

इहां कोऊ तटंकना करतु है,— कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनौ अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनौ सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासौं निर्जरा कैसैं? यह हम नाहीं समुझी—ताको समाधानः—

सुनि भैया! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता जथाख्यातको अंश है तातै विशुद्धता में शुद्धता आई॥ भी वह तटंकनावारो बोल्यौ—तुम विशुद्धतासौं निर्जरा कही, हम कहतु है कि विशुद्धतासों निर्जरा नाहीं शुभबन्ध है—ताकौ सामाधान,— कि सुन भैया यह तौ तू सांचो विशुद्धतासों शुभवन्ध, संक्लेशतासों अशुभवन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामैं है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है शुभपद्धति ऊर्द्धगतिको परनमन है तातैं अधोरूपसंसार ऊर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामैं आई मानि मानि, यामैं धोखौ नांहीं है विशु-

ता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद विना शुद्धताको जोर चलत नाहीं ? जैसैं कोऊ पुरुष नदीमैं डुबक मारै फिर जब उछलै तब दैवजोगशों ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तौ यद्यपि तारू पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै ? वाको जोर चलै नाहिं, वहुतेरा कलवल करै पै कछु बसाइ नांही, तैसैं विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भये मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण जथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताको जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहां मोक्षमार्ग साध्यौ तहां कह्यौ कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" और यौं भी कह्यो कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ताको विचार–चतुर्थ गुणस्थानकस्युं लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताकौ व्यौरौ, सम्यक्‌रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं ज्ञानकी शुद्धता क्रियासौं क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामै शुद्धता है तौ जथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामैं ता न होती तो ज्ञान गुन शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवलो विषै, सो यो तो नहीं वामैं शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहां कोई कहैगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाहीं। कोऊ गुन काहू गुनके सारै नहीं सब असहाय रूप है। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तौ अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातैं विशुद्धतामैं जथाख्यातको अंश है तातैं

वह अंश क्रम क्रम पूरण भयौ। ए भइया उटकनावारे—तै विशुद्धतामें शुद्धता मानी कि नाहीं. जो तौ तैं मानी तौ कछु और कहिवेकौ कार्य नाहीं। जो तैं नाहीं मानी त तेरौ द्रव्य याही भांति कौ परनयौ है हम कहा करि हैं जो मानी तौ स्याबासि। यह तौ द्रव्यार्थिककी चौभंगी पूरन भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभंगी सुनौ एक तौ वक्ता अज्ञानी, श्रोता भी अज्ञानी सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशद्ध। चौथौ वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका

अथ निमित्त उपादान के दोहे लिख्यते।

दोहा।

गुरुउपदेश निमित्त विन, उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव विन, चलवेको आधीन॥ १॥
हौ जानै था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन विन, पानीमांहि जहाज॥ २॥

दोनो दोहों का उत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥
उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥
उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव।
एक चक्रसौं रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥
सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाह में, तिरै सहज विन पौन ॥ ६ ॥
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश।
बसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादान के दोहे.

अथ अध्यातमपदपंक्ति लिख्यते,

(१)

राग भैरव

या चेतनको सब सुधि गई।
व्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक
है जडरूप अपावन देह।
तासौं राखै परमसनेह, या चेतनकौं० ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथबंध।
तिनहिं कुटब कहै जा बंध ॥

आप अकेला जनमै मरै।
सकल लोककी ममता धरै, या चेतनकी० ॥ १ ॥
होत विभूति दानके दिये।
यह परपंच विचारै हिये।
भरमत फिरै न पावइ ठौर।
ठानै मूढ़ और की और, या चेतनकी० ॥ ३ ॥
बंध हेतको करै जुखेद।
जानै नहीं मोक्षको भेद।
मिटै सहज संसार निवास।
तब सुख लहै 'बनारसिदास', या चेतनकी० ॥४॥

(·)

राग रामकली—

चेतन तू तिंहुकाल अकेला,
नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटंबका मेला, चेतन० ॥ टेक ॥
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला।
सुख संपति शरीर जलबुद्बुद, विनशत नाहीं बेला, चेतन० ॥ १ ॥
मोहमगन आतमगुन भूलत, परि तोहि गलजेला।
मैं मैं करत चहूं गति डोलत, बोलत जैसे छेला, चेतन० ॥ २ ॥
कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला, चेतन० ॥ ३ ॥

(३)

राग रामकली

मगन है आराधो साधो! अलख पुरुष प्रभु ऐसा ॥ टेक ॥
जहाँ जहाँ जिस रससौं राचै, तहाँ तहाँ तिस भेसा, मगन० ॥ १ ॥

सहज प्रवान प्रवान रूप में, संसैमें संसैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान में लै सा, मगन० ॥ २ ॥
उद्यम करत उद्यमी कहिये, उद्‌यसरूप उदै सा।
व्यवहारी व्यवहार करम में, निहचै में निहचै सा, मगन० ॥ ३ ॥
पूरण दशा धरै संपूरण, नय विचार में तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा, मगन० ॥ ४ ॥
नाहीं कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तौ है सा।
एक अनेक रूप ह्वै वरता, कहौं कहाँ लौं कैसा, मगन० ॥ ५ ॥
कल्पित वचन विलास 'वनारसि' वह जैसेका तैसा, मगन० ॥ ६ ॥

(४)

दोहा।

जिन प्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माहिं।
पै जाके दूषण लगै, वंदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥
मेटी मुद्रा अवधिसों, कुमती कियो कुदेव।
विघन अंग जिनविंवकी, तजै समकिती सेव ॥ २ ॥

(५)

अज्ञानी की दशा

रूप की न झांक हिए करम को डांक पिये,
ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक जैसे घन में।
लोचन की ढांक सो न माने सद्‌गुरु हांक,
डोले मूढ़ रंक सो निशंक तिहूँपन में ॥
टंक एक मांस की डली सी तामें तीन फांक,
तीन को सो आंक लिखि रख्यो कहूँ तनमें।

तासों कहे नांक ताके राखने को करे कांक,
लांक सो खड्ग बांधि बॉक धरे मन में ॥
कॉच बाधै शिरसों सुमणि बॉधे पॉयनि सो,
जाने न गॅवार कैसा मणि कैसा कॉच है।
योंही मूढ झूठ में मगन झूठ ही को दौरे,
झूठ बात माने पै न जाने कहा सॉच है ॥
मणि को परखि जाने जौहरी जगत माहीं,
सांच की समझ ज्ञान-लोचन की जांच है।
जहां को जुवासी सो तो तहॉ को मरम जाने,
जापे जैसो स्वांग तापे तैसे रूप नाच है ॥

(६)

राग-विलावल।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी।
जैसै निरख मरीचिका, मृग मानत पानी। ऐसैं० ॥ १ ॥
ज्यों पकवान चुरैलका, विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही। ऐसैं० ॥ ॥
देह अपावन खेटकी, अपको करि मानी।
भापा मनसा करमकी, तै निजकर जानी। ऐसैं० ॥ ३ ॥
नाव कहावति लोककी, सो तौ नहीं भूलै।
जाति जगतकी कलपना, तामैं तू भूलै। ऐसैं० ॥ ४ ॥
माटी भूमि पहारकी, तुह संपति सूझै।

प्रगट पहेली मोहकी, तू तऊ न बूझै। ऐसै० ॥ ५ ॥

तैं कबहू निज गुनविषै, निजदृष्टि न दीनी।

पराधीन परवस्तुसों, अपनायत कीनी, ऐसै० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूंढ़त बन दौरै।

त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत औरै, ऐसैं० ॥ ७ ॥

करता भरता भोगता, घट सो घटमांहीं।

ज्ञान विना सद्गुरु विना, तू समुझत नाहीं, ऐसैं० ॥ ८ ॥

(७)

राग-बिलावल

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी।

ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी, ऐसैं० ॥ १ ॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।

त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै, ऐसै० ॥ २ ॥

जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।

तैसे पंडित पिंडकी, रचना निरवारै, ऐसैं० ॥ ३ ॥

पिंडस्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।

जानै मानै रमि रहै, घट व्यापक सोई ऐसै० ॥ ४ ॥

चेतन लच्छन है धनी, जड लच्छन काया।

चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया, ऐसै ॥ ५ ॥

लच्छन भेद विलेच्छकों, सु विलच्छन वेदै,

सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै, ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों रजसोधै न्यारिया, धन सौं मनकी लै।

त्यों मुनिकर्म बिपाकमें, अपने रस भीलै, ऐसैं० ॥ ७ ॥

आप लखै जब आपको, दुविधापद मेटै।

सेवक साहिब एक हैं, तब को किहिं भेंटै? ऐसैं० ॥ ८ ॥

(८)

राग—आसावरी।

तू आतम गुन जानि रे जानि,

साधु वचन मनि आनि रे आनि, तू आतम० ॥ १ ॥

भरत चक्रपति षटखंड साधि,

भावना भावति लही समाधि, तू आतम० ॥ २ ॥

प्रसनचंद्ररिषि भयो सरोष,

मन फेरत फिर पायो मोष, तू आतम० ॥ ३ ॥

रावन समकित भयो उदोत,

तब बांध्यो तीर्थंकर गोत, तू आतम० ॥ ४ ॥

सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल,

पहुँच्यो पंचमगति तिहँ काल, तू आतम० ॥ ५ ॥

दिढ प्रहारकरि हिंसाचार,

गये मुकति निजगुण अवधार, तू आतम० ॥ ६ ॥

देखहु परतछ भृंगी ध्यान,

करत कीट भयो ताहि समान, तू आतम० ॥ ७ ॥

कहत 'बनारसि' वारंवार,

और न तोहि छुडावनहार, तू आतम० ॥ ८ ॥

(९)

राग—आसावरी।

रे मन ! कर सदा सन्तोष,

जातैं मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥

बढत परिग्रह मोह बाढ़त, अधिक तृपना होति।

बहुत इंधन जरत जैसैं, अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥

लोभ लालच मूढजनसो, कहत कंचन दान।

फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान, रे मन० ॥ ३ ॥

नारकिन के पाइ सेवत, सकुच मानत संक।

ज्ञानकरि बूझै 'बनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥ ४ ॥

(१०)

राग—बरवा।

बालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटि।

अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटि, बालम ॥ १ ॥

हूं तिक रहूँ जे सजनी रजनी घोर।

घर करकेउ न जानै चहुदिसि चोर, बा० ॥ २ ॥

पिउ सुधियावत बनमें पैसिउ पेलि।

छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, बा० ॥ ३ ॥

संवरौ सारदसामिनि औ गुरु भान।

कछु बलमा परमारथ करों बखान, बा० ॥ ४ ॥

काय नगरिया भीतर चेतन भूप।

करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप, बा० ॥ ५ ॥

दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय।
पियरा गरुव सचीकन कंचन होय, बा० ॥ ६ ॥
चेतन चित अवधार सुगुरु उपदेश।
कछु इक जागति ज्योति ज्ञान गुन लेस, बा० ॥ ७ ॥
अथिररूप सब देखिसि छिन वैराग।
चेतन आपुहि आप बुझावै लाग बा० ॥ ८ ॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर।
चार चोर घर मूंसहि सरवस तोर, बा० ॥ ९ ॥
चेतन तुहुँ वनसावज कोलकिरात।
निसिदिन करै अहेर अचानक घात, बा० ॥ १० ॥
चेतनहो तुहूँ चेतहु परम पुनीत।
तजहु कनक अरु कामिनी होहु नचीत, बा० ॥ ११ ॥
परेहु करमवस चेतन ज्यों नटकीस।
कोउ न तोर सहाय छाडि जगदीस, बा० ॥ १२ ॥
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष।
राग दोष दुइ बंधन छूटत मोष, बा० ॥ १३ ॥
मोहजाल में चेतन सब जग जानि।
तुहु कुवाज तुहु बाझहु सगत भुलान, बा० ॥ १४ ॥
चेतन भयेहु अचेतन सगति पाय।
चकमक में आगी देखी नहिं जाय, बा० ॥ १५ ॥
चेतन तुहि लपटात प्रेमरस फांद।
जस राखत धन तोपि विमलनिशिचांद, बा० ॥ १६ ॥

चेतन तोहि न भूल नरक दुख वास।
अगनि थंभ तरुसरिता करवत पास, बा० ॥ १७ ॥

चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराउ।
बांध पांच ठग वेग तोर अव दाउ, बा० ॥ १८ ॥

देवजोनि सुख चेतन सुरग बसेर।
ज्यों विन नीव धौरहर खसत न वेर, बा० ॥ १९ ॥

चेतन नर तन पाय वोध नहिं तोहि।
पुनि तुहु का गति होइहि अचरज मोहि, बा० ॥ २० ॥

आदि निगोद निकेतन चेतन तोर।
भव अनेक फिरि आयेहु कतहु न ओर, बा० ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल।
छाडहु वेगि विचारि पापतरुमूल, बा० ॥ २२ ॥

गरभवास तुहुं चेतन ऊरध पांव।
सो दुख देख विचार धरमचित लाव, बा० ॥ २३ ॥

चेतन यह भवसागर धरम जिहाज।
तिह चढ बैठो छोड लोककी लाज, बा० ॥ २४ ॥

दह या दुहु अब चेतन होहु उचाट।
कह या जाउ मुकतिपुरि संजम वाट, बा० ॥ २५ ॥

उधवागाय सुनायेहु चेतन चेत।
कहत 'बनारसि' थान नरोत्तम हेत, बा० ॥ २६ ॥

(११)

राग—धनाश्री

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगततै जड़ता व्यापी निज गुन सकल टले, चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसौं विरचिठगनिसौं राचे, मोह पिसाच छले। हँसि हँसि फंद सवारि आप ही, मेलत आप गले, चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद सिंधुतें, फिर तिह पंथ टले। कैसें परगट होय आग जो दबी पहारतले, चेतन० ॥३॥ भूले भवभ्रम वीचि 'बनारसि' तुम सुरज्ञान भले। धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढि, बैठे ते निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

राग—रागधना श्री

चेतन तोहि न नेक संभार, नख सिखलौं दिढबंधन बेढ़े कौन करै निरवार, चेतन० ॥ १ ॥ जैसें आग पषान काठ में लखिय न परत लगार। मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार, चेतन० । २ ॥ ज्यों गजराज पखार आप तन, आप हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरा, तनहिं लपेटत तार चेतन० ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो, खुले न पेच अपार। और उपाय न बनै 'बनारसि' सुमरन भजन अधार, चेतन० ॥४॥

(१३)

राग—सारग।

दुविधा कब जै है या मनकी दु०। कब निजनाथ निरंजन सुमिरौं, तज सेवा जन जनकी, दुविधा० ॥ १ ॥ कब रुचिसौं

पीवै दृगचातक, बूंद अखयपद घनकी। कब शुभध्यान, धरौं समता गहि, करूं न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥ कब घट अंतर रहै निरन्तर, दिढ़ता सुगुरु वचनकी। कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥ कब घर छांड़ होहुं एकाकी, लिये लालसा वनकी। ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलिबलि वा छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राग—सारंग।

हम बैठे अपनी मौनसौं, दिन दशके महिमान जगत जन बोलि विगारैं कोनसौं, हम बैठें० ॥ १ ॥ गये विलाय भरम के बादर, परमारथपथपौनसौं। अब अंतरगति भई हमारी, परचे राधारौनसौं, हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै वौनसौं। छिन न सुहायँ और रस फीके, रुचि साहिब के लौनसौं, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय पाय सुखसंपति को निकसै निज भौनसौं। सहज भाव सद्गुरुकी संगति, सुरझै आवागौनसौं, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग—सारंग-वृंदावनी।

जगत में सो देवनको देव। जासु चरन परसै इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव, जगतमें ॥ १ ॥ जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्रीविषय न वेव। जनम न होय जरा नहिं व्यापै, मिटी मरनकी टेव, जगतमें ॥ २ ॥ जाकै नहिं विषाद नहिं विस्मय,

नहिं आठों अहमेव। राग विरोध मोह नहि जाकै नहिं निद्रा परसेव, जगतमें० ॥ ३ ॥ नहि तन रोग न श्रम नहिं चिंता, दोप अठारह भेव। मिटे सहज जाके ता प्रभुकी, करत 'वनारसि' सेव, जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

राग–सारंग वृंदावनी।

विराजै "रामायण" घटमाहिं। मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहिं, विराजै रामायण० ॥ १ ॥ आतम "राम" ज्ञान गुन 'लछमन' सीता' सुमति समेत। शुभपयोग "वानरदल" मंडित, वर विवेक "रणखेत" विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान 'धनुप टकार' शोर सुनि, गई विपयदिति भाग। भई भरम मिथ्यामत 'लंका' उठी धारणा 'आग' विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल' लरे निकांछित 'सूर'। जूझे रागद्वेष सेनापति संसै 'गढ' चकचूर, विराजै० ॥ ४ ॥ वलखत 'कुंभकरण' भवविभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव'। थकित उदार वीर 'महिरावण' 'सेतुबंध' समभाव, विराजै० ॥ ५ ॥ मूर्छित 'मंदोदरी' दुराशा, सजग चरन 'हनुमान'। घटी चतुर्गति परणति 'सेना,' छुटे छेपकगुण 'बान,' विराजै० ॥ ६ ॥ निरखि सकति गुन 'चक्रसुदर्शन' उदय 'विभीपण' दीन। फिरै 'कवध' मही 'रावणकी' प्राणभाव शिरहीन, विराजै० ॥ ७ ॥ इह विधि सकल साधुघट अंतर, होय सहज 'संग्राम'। यह विवहारदृष्टि 'रामायण,' केवल निश्चय 'राम' विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप दोहा ।

जो दातार दयाल हैं, देय दीनको भीख ।
त्यों गुरु कोमल भावसौं, कहै मूढको सीख ॥ १ ॥
सुगुरु उचारै मूढसौं, चेत चेत चित चेत ।
समुझ समुझ गुरुको शबद, यह तेरो हित हेत ॥ २ ॥
शुक सारी समुझैं शबद, समुझि न भूलहिं रंच ।
तू मूरति नारायणी, वे तो खग तिरजंच ॥ ३ ॥
होय जौंहरी जगतमें, घटकी आखैं खोलि ।
तुला सँवार विवेककी, शब्द जवाहिर तोलि ॥ ४ ॥
शब्द जवाहिर शब्द गुरु, शब्द ब्रह्मको खोज ।
सब गुण गर्भित शब्दमें, समुझ शब्दकी चोज ॥ ५ ॥
समुझ सकै तो समुझ अब, है दुर्लभ नर देह ।
फिर यह संगति कब मिलै, तू चातक हौ मेह ॥ ६ ॥

(१८)

राग—गौरी ।

भौंदू भाई! समुझ शबद यह मेरा, जो तू देखै इन आँखि-नसौं तामैं कछू न तेरा भौंदू० ॥ १ ॥ ए आँखैं भ्रमहीसौं उपजी, भ्रमही के रस पागी । जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इनही को रागी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ ए आँखै दोउ रची चामकी, चाम हि चाम विलोवै । ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपनरूप तू जोवै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ इन आँखिनकौ कौन भरोसो, ए विनसैं

छिन माहीं । है इनको पुद्गलसौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं, भौंदू भाई० ॥ ४ ॥ पराधीन बल इन आंखिनको, विनु प्रकाश न सूझै । सो परकाश अगनि रवि शशिको, तू अपनों कर बूझै, भौंदू भाई० ॥ ५ ॥ खुले पलक ए कछुइक देखहिं, मुंदे पलक नहिं सोऊ । कबहुं जांहिं होंहि फिर कबहूं, भ्रामक आँखैं दोऊ, भौंदू भाई० ॥ ६ ॥ जंगमकाय पाय ए प्रगटैं, नहिं थावर के साथी । तू तो इन्हैं मान अपने दृग, भयो भीमको हाथी, भौंदू भाई० ॥७॥ तेरे दृग मुद्रित घट अंतर, अन्धरूप तू डोलै । कै तो सहज खुलै वे आंखैं, कै गुरु संगति खोलै, भौंदू भाई ! समुझ शबद यह मेरा ॥ ८ ॥

(१६)

राग–गौरी ।

भौंदू भाई देखिहिये की आंखै, जे करपै अपनी सुख सपति भ्रमकी संपति नाखैं, भौंदू भाई ॥ १ ॥ जे आंखै अमृतरस बरखैं, परखै केवलिवानी । जिन्ह आंखिन विलोकि परमारथ, होंहिं कृतारथ प्रानी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ जिन आंखिनहिं दशा केवलिकी कर्मलेप नहिं लागै । जिन आंखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ जिन आंखिनसौ निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै । जिन आंखिनसौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यानधारणा धारै, भौंदू भाई ॥ ४ ॥ जिन आंखिनके जगे जगतके, लगैं काज सब झूठे । जिनसौं गमन होइ शिवसनमुख, विषय विकार अपूठे, भौंदू भाई० ॥ ५ ॥ जिन आंखिनमें प्रभा परमकी,

परसहाय नहिं लेखैं। जे समाधिसौं तकै अखंडित, ढकै न पलक निमेखै, भौंदू भाई० ॥ ६ ॥ जिन आंखिनकी ज्योति प्रगटिकै, इन आंखिनमैं भासैं। तब इनहूकी मिटैं विषमता, समता रस पर गासै, भौंदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आंखैं पूरनस्वरूप धरि, लोकालोक लखावै। अब यह वह सब विकलप तजिकै, निरविकलप पद पावैं भौंदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग—काफी।

तू भ्रम भूल ना रे प्रानी, तू० धर्म विसारि विषयसुख सेवत, वे मति हीन अज्ञानी, तू भ्रम० ॥ १ ॥ तन धन सुत जन जीवन जोवन, डाभ अनी ज्यों पानी, तू भ्रम० ॥ २ ॥ देख दगा परतच्छ 'बनारसि' ना कर होइ विरानी, तू भ्रम० ॥ ३ ॥

(२१)

राग—काफी।

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा, शोक हरै तिहुं लोकको, उठ लीजतु नाम सवेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा। देखत मूरत भावसौं, मिट जात मिथ्यात अंधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जोनि वसेरा। मोहि अभयपद दीजिये, फिर होय नहीं भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ बिंब विराजत आगरे, थिर थान थयो शुभवेरा। ध्यान धरै विनती करै, 'बनारसि' बंदा तेरा, चिन्तामन० ॥ ४ ॥

इति अध्यातमपदपंक्ति।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते ।

सहज हिंडना हरख हिंडोलना, झुकत चेतनराव ।
जहाँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, 'रस' स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥
जहँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरुचि भूमि सुरंग ।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड अभग ॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, भौंर विमल विवेक ।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी, सुमति पटली एक । सहज० ॥ १ ॥
पट कील जहां षडद्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल ।
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ अशुभ कल्लोल ॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत बीरे देत ।
आनंदकंद सुछंद साहिब, सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥
जहँ खिपक उपशम चमर ढारइ, धर्म ध्यान वजीर ।
आगम अध्यातम अंगरच्छक, शान्तरस बरवीर ॥
गुनथान विधि दश चार विद्या, शकतिनिधिविस्तार ।
संतोष मित्र खवास धीरज, सुजस खिजमतगार, सहज० ॥ ३ ॥
धारना समिता छमा करुणा, चारसखि चहुँ ओर ।
निर्जरा दोऊ चतुरदासी, करहिं खिजमत जोर ॥
जहँ विनय मिलि सातों सुहागनि, करत धुनि झनकार ।
गुरुवचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार, सहज० ॥ ४ ॥
श्रद्दहन सांची मेघमाला, दाम गर्जत घोर ।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥

अनुभूति दामनी दमक दीसै, शील शीत समीर ।
तप भेद तपत उछेद परगट, भावरंगत चीर, सहज० ॥ ५ ॥
कबहूं असंख प्रदेश पूरन, करत वस्तु समाल ।
कबहूँ विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अड़ताल ॥
कबहूँ अबंध अदीन अशरन, लखत आपहि आप ।
कबहूँ निरंजन नाथ मानत, करत सुमरन जाप, सहज० ॥ ६ ॥
कबहूँ गुनि गुन एक जानत, नियत नय निरधार ।
कबहूँ सुकरता करम किरिया, कहत विधि व्यवहार ॥
कबहूँ अनादि अनंत चिंतित, कबहुं करहि उपाधि ।
कबहूँ सु आतम गुणसँभारत, कबहुं सिद्ध समाधि, सहज० ॥७॥
इहिभांति सहज हिंडोल झूलत, करत आतम काज ।
भवतरनतारन दुखनिवारन, सकल मुनिसिरताज ॥
जो नर विचच्छन सदैयलच्छन, करत ज्ञानविलास ।
करजोर भगति विशेष विधिसौं, नमत 'काशीदास' ॥ ८ ॥

इति परमारथहिंडोलना ।

अष्टपदी मल्हार

देखो भाई ! महाविकल संसारी, दुखित अनादि मोहके कारन, राग द्वेष भ्रम भारी, देखो भाई महाविकल संसारी ॥ १ ॥ हिंसारंभ करत सुख समुझै, मृषा बोलि चतुराई । परधन हरत समर्थ कहावैं, परिग्रह बढत बडाई, देखो भाई० ॥ २ ॥ वचन

राख काया दृढ राखैं, मिटै न मनचपलाई। यातैं होत औरकी औरैं, शुभ करनी दुखदाई, देखो भाई० ॥ ३ ॥ जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै। कथनी कथत महंत कहावै ममता मूल न त्यागै, देखो भाई० ॥ ४ ॥ आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठमद आनै। जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै, देखो भाई० ॥ ५ ॥ जडसौं राचि परमपद साधै, आतमशक्ति न सूझै। विना विवेक विचार दरबके, गुण परजाय न बूझै, देखो० ॥ ६ ॥ जसवाले जस सुनि संतोपै, तप वाले तन सोषैं। गुनवाले परगुनको दोपै, मतवाले मत पोषैं, देखो० ॥ ७ ॥ गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोहविकलता छूटै। कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै, देखो० ॥ ८ ॥

इत्यष्टपदी मल्हार सम्पूर्ण।

राग-

मूलन बेटा जायोरे साधो, मूलन०। जानै खोजकुटुंब सब खायो रे साधो० मूलन० ॥ टेक ॥ जन्मत माता ममता खाई, मोहलोभ दोइ भाई। कामक्रोध दोइ काका खाये, खाई तृपनादाई, साधो० ॥ १ ॥ पापीपापपरोसी खायो, अशुभकरम दोइ मामा। मान नगरको राजा खायो, फैल परो सबगांमा, साधो० ॥ २ ॥ दुरमति दादी खाई दादो, मुखदेखत ही मूओ। मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ, साधो० ॥ ३ ॥ नाम धरयो बालकको भोंदू, रूप

वरन कछु नाहीं । नामधरंते पांडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई, साधो० ॥ ४ ॥

राग—बंगला ।

वा दिनको कर सोच जिय ! मनमें वा दि० टेक ।

बनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारीरे । ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारीरे ॥ आखिर बाजी हारी, करले चलनेकी तय्यारी । इक दिन डेरा होयगा वनमें, वादिन० ॥ १ ॥ झूंठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी । इकदिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी, नाहक चित्त लगावै धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियो, पानी से पानी ।मूरखसेती मूरख मिलियौ, ज्ञानी से ज्ञानी । यह मिट्टी है तेरे तनमें, वादिन० ॥ ३ ॥ कहत 'बनारसि' सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे । जीवन मरन किया सो नाहीं, सिरपर काला निशाना रे । सूझ पडेगी बुढापेपनमें वादिन० ॥ ४ ॥

राग—

कित गये पंच किसान हमारे । कित० टेक ॥

बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे । कपटी लोगों से साझाकर,......हुए आप विचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना गह गह बैठो लिखलिख कागद डारे । बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कंठ शबद नहिं निकसत, हा हा कर्मसों हारे । 'बानारसि' या नगर न बसिये, चलगये सींचनहारे ॥ ३ ॥

दो नये पद

राग रामकली

म्हारे प्रगटे देव निरंजन ।
अटको कहा कहा सर भटकत कहा कहूँ जन रंजन ॥ म्हारे ॥१॥
खंजन दृग दृग नयनन गाऊं चाऊं चितवत रंजन ।
सजन घट अंतर परमात्मा सकल दुरित भय रंजन ॥
॥ म्हारे ॥२॥
वोही कामदेव होय काम घट वोही सुधारस मंजन ।
और उपाय न मिले बनारसी सकल करमषय खंजन ॥
॥ म्हारे ॥३॥

राग आसावरी

साधो लीज्यो सुमति अकेली जाके समता संग सहेली ॥ साधो०॥
ये है सात नरक दुख हारी, तेरे तीन रतन सुभकारी ।
ये है अष्ट महा मद त्यागी, तजे सात व्यसन अनुरागी ॥
॥ साधो० ॥१॥
तजै क्रोध कषाय निदानी, ये है मुक्तिपुरी की रानी ।
ये है मोहस्यों नेह निवारै, तजै लोभ जगत उधारै ॥
॥ साधो० ॥२॥
ये है दर्शन निरमल कारी, गुरु ज्ञान सदा सुभकारी ।
कहै बनारसी श्री जिन भजिलै, यह मति है सुखकारी ॥
॥ साधो० ॥३॥

बनारसीविलास के संग्रहकर्त्ता

नगर आगरेमैं अगरवाल आगरो जो,
गर्ग गोत आगरेमैं नागर नवलसा।
संघवी प्रसिद्ध अभैराज राजमान नीके,
पंच बाला नलनिमैं भयो है कंवलसा॥

ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संघइन,
जाके जिनमारग विराजत धवलसा।
ताहीको सपूत जगजीवन सुदिढ जैन,
बानारसी बैन जाके हिये में सबलसा।

समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयो,
ज्ञानिन की मंडलीमैं जिसको विकास है।
तिनने विचार कीना नाटक बनारसी का,
आपुके निहारिवे को आरसी प्रकाश है॥

और काव्य घनी खरी करी है बनारसी ने,
सो भी क्रमसे एकत्र किये ज्ञान भास है।
ऐसी जानि एक ठौर, कीनी सब भाषा जोर,
ताको नाम धर्‌यो यो बनारसीविलास है॥

दोहा

सत्रहसै एकोत्तरै, समय चैत्र सित पाख।
द्वितियामैं पूरन भई, यह बनारसी भाख॥

इति श्री कविवर बनारसीदासकृत बनारसी विलास समाप्त।

टिप्पणियां एवं पाठभेद

[यहां इस ग्रंथ के कठिन स्थलो की टिप्पणिया एव अर्थ दिये जाते हैं। ग्रंथ के मूल शब्दों के आगे जो शब्द कोष्ठक मे दिये गये हैं वे पाठान्तर है। टिप्पणिया एवं अर्थ पाठान्तरो की नही है, किन्तु मुद्रित पाठों की हैं। कई स्थानो पर केवल पाठ भेद ही देदिये गये हैं—उनके अर्थ देने की जरूरत नहीं समझी गई। ग्रंथ का अध्ययन करते समय पाठकों के ये अर्थ और पाठान्तर जरूर देखलेना चाहिए। —सम्पादक]

पृ० २—वचनिका—गद्य। विरधौ—बढो। लग (लौ)—तक।

पृ० ३—करहुँ (करि, करौं)—करके। ब्रह्म—भगवान। परमान (परवांण)—अवधि। द्विरुक्ति (दुरुक्ति)—दो बार कहना। क्षमी (छमी)—क्षमावान। परमान (परवान) प्रमाण स्वरूप। निर्वाण (निरवान)—मुक्ति स्वरूप।

पृ० ४—पुण्डरीकवत हंस (पुण्डरीकवनहंस)। दुराराध्य (दुराराधि)—कठिनता से आराधना करने योग्य।

पृ० ५—नित्यानन्द विमल निरुज्ञान (नित्यानित्य विकल निरुढान) (नित्यानंद विमल निरुढान) (नित्यानित्य विमल निरुमान)। बोध निधान (बोध विधान) (बोध वितान)—ज्ञान का खजाना। गुणमय (गुणधन)। स्वपर प्रकाशक (सुपर प्रकाशक)—अपने और दूसरे के प्रकाश करने वाले।

गुणग्रह (गुणगृह)-गुणों के घर। चिन्तामणि (चिन्तामयि)-एक प्रकार का रत्न जो चिन्तवन करते ही सब कुछ देदे। चिन्मय (चिन्मृष) (चिन्मुख)-चैतन्य मय। चारित्रधाम (चारित्रधार)- चारित्र का स्थान। निर्मम (निर्मन)-ममत्व रहित।

पृ० ६—अवक (अवंक)-सरल। प्रपु ज. (प्रजुंज) (प्रभुंज)- समूह। विमुक्त (विमुत्त)-कर्म रहित। क्षपाकरोपम (छपाकरोछम)- चन्द्रमाके समान। कृतयज्ञ (कृतजग्य)-जो उपासना कर चुका है। लुप्तमुद्र (लुप्तभद्र)-जिसका शरीर नष्ट होगया है। धीरस्व (धीरस्थ) धीर है आत्मा जिनका। शिलीद्रुम (शीलद्रुम)- शीलवृक्ष। उद्योतवान (उग्गोतवान)-प्रकाशवाले।

पृ० ७—दुर्गम्य (दुर्गम)-जो कठिनता से जाने जा सकते हैं। दयार्णव (दयारनव)-दया के समुद्र। महर्षि(महारिषि)- महामुनि। परमेश्वर (परमेसुर)। परमऋषि , परमरसी) (परमरिसी)। परमसुद्र (करमसुद्र)(सुखकरसमुद्र)-उत्कृष्ट स्थितिवाले। अशेष (अभेष)-पूर्णता स्वरूप। निर्द्वन्दी(निरदुन्दी)-रागद्वेष रहित। निरवशेष (निर विशेष)-पूर्ण। बुधि नायक (बुधनायक)-बुद्धि के नेता। मोक्षस्वरूपी (भोखस्वरूपी)। महाज्ञानि (महाजानि)- विशाल ज्ञान वाले। कमला समूह(करुणा समह)-लक्ष्मी के पुंज।

पृ० ८—मारविहंडन (मानविहंडन) कामका नाश करने वाले। द्रव्यस्वरूप (दरवस्वरूप) नित्य। पद्म (पदुम) उप्पम-कमल के समान। महायशवंत (महाजशवंत)-अत्यंत यशस्वी। संकट

निवारन (कंटक निवारन)-संकटों के नाशक।

पृ० ९ – व्यतीत भय (वितीत भय) भय रहित। कुशला (कुशली) प्रवीण।

पृ० १०—लक्ष्मीपति (लछिमापति) (लछिमीपति)-अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के स्वामी। मिथ्यादलन (विथादलन)-असत्य के विनाशक। घटातीत (घटानीत)-घटनाओं से रहित। विषारी (विचारी)-विष को दूर करने वाले। व्यवहारी (विवहारी)-असंख्य प्रदेशी (असंख प्रदेशी)। निर्म्मल (निरमल)।

पृ० ११—द्वंद्व विदारण (दुंद निवारण)-दुविधा के विनाशक। सब विधिव्यापी (सर्व वियापी)-हर जगह मिलने वाले।

पृ० १२—विज्ञानी (विनानी)-जानने वाले। निर्ग्रंथी (निरग्रंथी)-परिग्रह रहित। यंत्रदाहक (यंत्रदोहत) (यत्र दाहन)-शरीर को नष्ट करने वाले। भरम विध्वंसी (भरम विधंसी)-भ्रम को दूर करने वाले। चिदंकित (चिदंकृत)-चैतन्यलक्षण। ज्योतीश्वर (ज्योतीसुर)-प्रभा के स्वामी। अनंग (असंग)-कामरहित।

पृ० १३—शांति करन (संति करन)। धृतशान्ति (धृतसंति)। कान्ति (कंति)। अशंक (असंख)। असोग (असोक)। विधान (निधान)। अक्षय निधान (अखतनिधान)।

पृ० १४—सुगुण (सगुण)। विश्व (वैश्व)। वित्त (विलास) (पवित्त)। शुद्धोधन(सौधोदनि)-बुद्ध। बंधु(बंध)। महद्दंग(नहदंग) (महदर्ग)। निराधिप (निराधिप)।

पृ० १५—महास्वामि (महस्वामि)। महदर्थ (महदर्थ)। गुणागार (गुणाकार)। महारसंग (महारस रंग)। कलिग्राम (कलग्राम)। वेल (मोड़)। त्रिगुणी (त्रिगुण)। त्रिकालदर्शी सदा (त्रिकालदरशी दशा) मनमथमथन (मनमथदहन —काम को मथन करनेवाले।

पृ० १६—ब्रह्मांड (ब्रहमंड)-सम्पूर्ण विश्व। मोपर (मोपैं,-मुझपर।

सूक्तिमुक्तावली

पृ० १७—कांतार (कन्तार)-वन। हुतासन-आग।

पृ० १८—परिमल-सुगन्ध। रसाल-रसिक।

पृ० १९—हींडत-(हंडत) घूमते हुए। वादि-व्यर्थ। वाहित (वाहित) (बोहित)-बड़ी नौका। त्यों यह दुर्लभ देह बनारसि (त्यों नरदेह दुर्लभ बनारसि)।

पृ० २१—पूजहु (पुज्जहि)-पूजो। गुरु नमहु (गुरु नमहि)। वखानहु (वखानहि)। चहहु (चहहि)-चाहते हो। आपे-प्राप्त करवाती है। नित देह (नरदेह)।

पृ० २२—खंड पति-अपनी स्त्री से विरक्ति रखने वाला पति। सो सब (ते सब)।

पृ० २३—सुरनि- नैन—देवांगनाओं की आंखों से। करहि (करंत)-करते हैं।

पृ० २४—सुखकारन (सुख कामिनि)। पीके-प्रियजन के।

पृ० २५—बूझ—समझते।

पृ० २६—गुण रु औगुण नहिं जानहि (गूझ गुण अगुण न जानहिं)। अवेवहिं—जानते। अमृतकहं .(अमृत कुं'-अमृत को। नीरकहं (नीरकुं)-जल को। मित्रकहं (मित्रकुं)-मित्र को।

पृ० २७—कहिं (कुं)-को। तुल्लहिं-समझते हैं। झुल्लहिं-भूलते हैं। अपत-निर्लज्ज। रोहण शिखर-एक पर्वत जिसमें रत्न उत्पन्न होते हैं।

पृ० २८—गुणमंदिर (गुणमंडित)-गुणों के स्थान। शुचि-पवित्र। जंगम-चलता हुआ। तीरथ-संसार से तैरने का उपाय। गुणरास (गुणरासि)।

पृ० २६—जंपन-बोलना,कहना। पयार-पयाल खोखला पूला। खान (खानि)। आली-सखी।

पृ० ३०—लेखिए (पेखिए)। अरविन्द-कमल। सूर-सूरज। अंथवत-आंथना।

पृ० ३१—कालकूट-जहर। जींवन (जीवत) बाढत रसांस-अजीर्ण बढते हुए। चित्तदया (चित्तदयाल)। तिनके रुख-उनके लिए।

पृ० ३२—आराम-बाग। मीत-मित्र। तोय-जल। रवि-सूरज। विचक्षण-विवेकी।

पृ०३३–कुरंग–हरिण। ब्याल–सांप। पियूष–अमृत। अहिफन–सांप का फण। सत्यवादी के दरस तैं (सत्यवादी दरशन तैं)।

पृ० ३४—बिसरै (विस्तरैं)–फैले।

पृ० ३५—गोपहि (गोपैं)–छिपाना। विलोपहि, (विलोपै) नाश करना। लोरहि–लिपटना। उपाध–झगड़े।

पृ० ३६—मलान–मैला। दलमलहिं (दलमलै) बोरै–डुबोवै।

पृ० ३७—भालै—भलि भांति देखना। खंडमित–टुकडे जितना। किलसै—क्लेश को प्राप्त करवाना। तनथूल–मोटा शरीर।

पृ० ३८—समतूल–समान। गयन्द–गजेन्द्र। अघायवेको–सतुष्ट करनेको। नीतनयनीरज–नीति और न्याय रूपी कमल।

पृ० ३९—वालहित–वचपन का मित्र। विलासवन–क्रीडाक्षेत्र। दुरित–पाप। कलहनिकेत–कलह का घर। गवेषी–खोजनेवाला। याही–याकी।

पृ० ४०—मनहु—मानों। असित–काला। दवदान–अग्नि के देने के समान। तिहि (तहं)–उसको।

पृ० ४१—यश—(जश)। दुरवैन–खोटे वचन। समुच्चरन (समुधरन)–बोलना। आवरहि–ढकता है। नाग–हाथी। विहंडहि–तोडता है। धूपमहँ (धूपगह)–गर्मी में। गोप–ढकना।

पृ० ४२—सरिता–नदी। गुणग्राम–गुणों का समूह। वधबुद्धि–हिंसा का भाव। पटंतर–समान। सर्वज्ञ किशोर–सम्यग्दृष्टि। वेद–शास्त्र।

पृ० ४३—भीर—भीड़। मातंग-हाथी। नीत-नीति।

पृ० ४४—कुशल-पुण्य। जनन को-(जनन कहँ)-उत्पन्न करने के लिए। शमवारिज-शांति रूपी कमल। उपाय (उपाउ)। बंचहि-ठगता है।

पृ० ४५—एम-इसतरह। मुगध-भोला।

पृ० ४६—पंथगाहे-रास्ता पकड़ता है। विराम-विश्राम। अनारज-अनार्य निकृष्ट। धाराधर-बादल। कुंभनंद-अगस्त्य ऋषि जो सारे समुद्र को पीगया था। जनन को-उत्पत्ति के लिए। अरणि-वांस। दारु-लकड़ी। भूरुह-वृक्ष। कंद-मूल। निशिमणि-चांद। कलाप-समूह। गयन्द-हाथी। केलिभौन-क्रीडागृह। याहू (याही)। विपाक-फल।

पृ० ४७—दुरित अंबर-पापरूपी आकाश। गति धारहि-गतिः धारण करता है। विथारहि-फैलाना बिखेरना। फलंग-अग्निकण। काढहि (कढ़ै) निकालती है। बाढ़हि (बढ़ै) बढ़ता है। उज्झहि-जलाता है। कँवरा इस पद्य का बनाने वाला कुंवरपाल कवि। औ (अरु)-और। मोष-मोक्ष। स्ववश (वश्य)-अधीन। सवै (वसै)-निधान-खजाना।

पृ० ४८—वरु-श्रेष्ठ। अहिवदन-सांपकामुंह। परजारहिं-जला देना। दारहिं-चीरडालना। गहहिं-ग्रहण करते हैं। चितवातुल-पागल, उन्मत्त। कृषिकार-किसान। भाने-नष्ट करता है।

पृ० ४९—वरु-चाहे। सज्जन कला-सज्जनता के कार्य। सूजी

(सूजि)-सूजकर । जंपहि-कहता है । सलहन-श्लाघा, प्रशंसा । विहंडहि-छोडता है । मंडहि-मांडता है ।

पृ० ५०—उमाहै-उत्साह करते हैं । सुधी विन (सुधी विनु) अच्छी बुद्धि के बिना ।

पृ० ५१—तोष-संतोष । वारहि-नष्ट करता है ।

पृ० ५२—दुरद—हाथी । मूलजग-मूलस्थान । सुमग-अच्छा मार्ग । उरग-सांप । मुद्रा करै-वंद करते हैं । करन सुभट-इन्द्रिय रूपी योद्धा ।

पृ० ५३—विभोको-विभव का । वूठे है-बोलते हैं । काठी-नष्ट ।

पृ० ५४—करोरी-तहवीलदार, करोडपति, रोकडिया । धोरी-अगुआ । अघोरी-घृणित-भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करने वाला ।

पृ० ५५—घूम-घूमना । तिसना दव-तृष्णा की आग । धूम की झांई-धुवां की मलिनता पोषित (पोषति) पोषण करती है । तांई-समान । सांई-स्वामी-पति । नरवै-राजा । जोवै-देखे । निशाचर-चोर । हगओट-छिपकर । ढोवै-लेजाते हैं । जच्छ-यक्ष दामधनी-पैसे का मालिक ।

पृ० ५६—कमला-लक्ष्मी । कंज-कमल । चरन-चारित्र ।

पृ० ५७—अनघ-पापरहित । सोपान-सीढी । सुपत्तहिं-सुपात्र । दलमलहि-नष्ट करता है । गंजहि-दुःख देता है । निरादर करता है ।

पृ० ५८—रमा-लक्ष्मी । चरचै (अरचै)-स्पर्श करता है । मिताई-मित्रता । परचै-परिचय ।

पृ० ५६—सप्तखेत–धन खरचने के सात क्षेत्र। वज्रधर–इन्द्र। मन्मथ–काम। दवज्वालमाल–अग्नि की ज्वाला का समूह। सगहरन–परिग्रह का हरण करने के लिए। संतमसुपुंज (संतमसपुंज)–अन्धकारका समूह। लब्धि–अपने स्वरूप की प्राप्ति। विबुधि–विद्वान। मदन–कामवासना।

पृ० ६०—गीरवाण–देव। भो–भव। दव आग–बनकी अग्नि। बरोसै–बरसै। खीसै–नष्ट हो। कुलाचल–हिमवान आदि कुल पर्वत।

पृ० ६१—पेड–तना। ध्रुव–निश्चल। प्रवाल–कौंपल। हुव–होती है। परतीत–श्रद्धा।

पृ० ६२—अलख–परमात्मा। चेरी–चेली। करणमृग–इन्द्रियरूप हिरण। वागुरा–लगाम।

पृ० ६३—गदा–एक हथियार जिसमें सिरे पर एक लट्टू रहता है। पौढी–पौढी हुई, पडी हुई। तरी–नौका। वेशरी–खच्चर। विलायत की–दूसरे देश की। जोवना–देखना।

पृ० ६४—धूर–धूल। जुर–बुखार। जुरांकुश–बुखार को दूर करनेवाली एक औषधि। अक्षगज–इन्द्रियरूपी हाथी। लोहफंद–लोहे का जाल। दाग–चिन्ह। भयभंजन (भवभंजन)–भय को दूर करनेवाले। समीर–हवा। दिवाकर–सूरज। दवपावक–वनकी आग।

पृ० ६५—यश (गुन)–कीर्ति। समाज–वैभव। रजकोष–मिट्टी का ढेर। मोष–मोक्ष।

पृ०६६—सो-इसी तरह। उपसर्पन-पूजा। सुपत्तहिं-सुपात्रोंको। परमानहिं (परमागम)-शास्त्र। प्रभुंजै-अनुभव करता है।

पृ० ६७—सुपात्रहिं (सुपत्तह)-अच्छे पात्रों को। कुशल-पुण्य

पृ० ६८—कटक-कड़ा। कर-हाथ। करन-इंद्रिय। वहोरकै-इकट्ठाकर, लौटाकर।

पृ० ६९—सीरो-शीतल। जोय-देख। अन्तर विपच्छ-भीतरी शत्रु काम क्रोधादि। विलच्छ-लज्जित। अच्छकदंब-इन्द्रियों का समूह। वम्ब-रणभेरी।

पृ० ७०—पद (पट्ट)। वादीमदभंजन (वादिमदभंजन)-वादियों के अभिमान को दूर करने वाला। विजयसेन (विजयसिंह) हैं सुपुरुष (होहिं सुरुख) (होंहि सुखी)।

ज्ञान वावनी—

पृ० ७२—शब्द (शवद)-ध्वनि। विशद (विहद)-निर्मल। शुद्धता स्वभाव लये-शुद्धस्वरूप की अपेक्षा। राय-राजा। चिदानंद-आत्मा। विभाव-विकार। लै (ये)-लेकर। त्रिगुण-तीनरूप। नरलोक-दुनियां में। अनक्षर अग्र-अनक्षरात्मक। पिण्ड-शरीर। सैन में बतायो है-अनक्षरात्मक श्रुत का उदाहरण संकेत है। बावन वरण-अक्षरात्मकश्रुत ज्ञान ५२ अक्षरों द्वारा प्रकट होता है। संनिपात-संयोग अर्थात् ५२ वर्णों के संयोग से बनने वाले असंख्यात संयोगी अक्षर होते हैं। तिन में (तामें)-उनमें। महामंत्र गायत्री-णमो अरिहंताणं आदि अपराजित मंत्र।

पृ० ७३—सारी-चौपड़ खेलने की गोटी। अमूल चूल-पर से माथे तक। मूलरस-प्रधान रस। गुणरूप (गुरुरूप)-गुणात्मक। सुहातमा-अच्छा लगने वाला। जातमा-व्यक्तिरूप। धुन्धवाउ-पागलपन। रुखिया-द्वेष करनेवाला या उस ओर झुकने वाला। धुखिया-झोंका हुआ। अरण-बॉस।

पृ० ७४—निदान-आगामी भोगों की वांछा। आनमान-पर पदार्थ का आदर। करसें-खैंचता है। राते-आसक्त होता है। सुछिति-अच्छी भूमि। अरस-जिसमें रस नहीं है। रसन-जीभ। तुलें-लिए। गुनकसिया-गुणों का घात करने वाला। परसिया-स्पर्श करने वाला। परस-स्पर्श। दस-दशा। अठ्ठावीस लवधि-अठ्ठाईस मूलगुण। अगम की-जिसका पाना मुश्किल है। सुगम-सरल।

पृ० ७५—अमीकुंड पिंड-अमृत का कुंड अथवा अमृत का पिंड। दीखे (देखे)-देखता है। कर-हाथ। नृपछत्रछांह-राजा की छत्र छाया। ग्रामवास (नेसवास)-ग्राम में रहना। मंगल प्रचंड-तेज चलने वाला हाथी अथवा घोड़ा। खर-गधा। ऐसी (ऐसो)-इस प्रकार। तासों ऐसी (वाको वैसो)। गरवाई-बड़प्पन। पिहुलाई-प्रभुता। सघनाई-सघनता। नागर-चतुर, शिष्ट या नगरवासी।

पृ० ७६—अनेरो-टेढा, खराब, निकम्मा। गरूरी-अभिमानी। सरजोर-बलवान, जबर्दस्त। बढैनाहिं मरजाद (बढैं न मरयाद कछू)। फैलकी-फैलने की। चित्रावेल-एक प्रकार की लता जो

मन चाहा फल देती है ! आई (वाइ) । पंचन के परपंच-पांचों इन्द्रियों के उत्पात । वल भेदकी-वल को भेदन करने वाली । सहज स्वभाव मोह सेना वल भेद की (सहज सुहाय मोह सेन भई मंदकी)।

पृ० ७७-उमग-उत्साह । अनन्द-आनन्द । वढै (छूटे)-आगे वढ जाने पर । वंधी कलवाजो पशुचाम ढोल मंढिये (पर न विकास भयो भवदधि कढिये)-वे अपनी कलावाजी को वांधते हैं और वे पशुके चमडे से मंढे हुए ढोल की तरह हैं । छते-होने से । दीखे (सेती)-दीखने से ।

पृ० ७८—कहर-आफत । पिण्ड-एक । विरमंड-सम्पूर्ण जगत । आन रे-हे भाई आओ । मिलत लोक-लोक इकट्ठे हो जाते हैं । एकतान-एकाग्र । स्वैरह्या-सो रहा है । च्वैरह्यो-चूरहा है ।

पृ० ७६—अगम ज्योति-आत्मज्योति । डोहै-अवगाहन करै । डोह्यो-अवगाहन किया । न उधरि है-उद्धार नहीं होता है । भवतरि है (गुण भरि है) । तलक-तक । वनारसीदास-(वनारसी ज्ञाता) । खलक-दुनियां । तुवक-छोटी तोप । सुवक-हलका । सुन्दर-कोमल । कलचम्पी-यन्त्र को दवाना । जानकी अर्थात जामगी,वन्दूक या तोप का पलीता । रंजक-तोप या वन्दूक की प्याली मे रखी जाने वाली तेज और थोडी सी वारूद ।

पृ० ८०—कुमक-सहायता । पक्षपात-तरफदारी । ग्यानकी-ज्ञानकी । उरधवाट-उन्मार्ग, खोटामार्ग । जो पै-जिसपर

अथवा यदि । सुषमना (सुषुमना)–नाडी तन्त्र का वह महत्त्वपूर्ण भाग जो मेरूदण्ड के भीतर रहता है (Spinal Cord), इस नाडी के प्रत्येक बाजू से ३१ नाडियां निकलती हैं जो शरीर के विभिन्नभागों में जाती हैं । इला–हठयोग की साधनभूत सुषुमना के बाईं ओर स्थित स्वतन्त्र नाडी मंडल के कन्दों की पंक्ति । पिंगला–हठयोग से सम्बन्धित सुषुमना के दाहिना ओर स्थित स्वतन्त्रनाडी मंडल के कन्दों की पंक्ति । सोज–समझ । षटचक्रबेधी गण–शरीर के भीतर कुण्डलिनी के ऊपर के छः चक्र–आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि,प्रज्ञा । मनमथ (मनमंथ)–कामदेव । धियागारी–बुद्धिमान । सारसुत–विद्वान । मेधा–बुद्धि वैस–वयस, उम्र । भौरी (फोरी)–घूमना ।

पृ० ८१—सेना चारि–चतुरङ्ग सेना । चौपर पसारी है (चौपर की सारी है) । धौसा–एक प्रकार का बाजा, नगारा, डका । खसि जायगो–खुस जायगा, चला जायगा । मुरे–मुडगये । उमाहयौ–उत्साह पैदा होगया । सरहद्द–अवधि, सीमा । चोपकर–उत्साह करके आदि छतें–आदि से । सुरो–बहादुर ।

पृ० ८२—झाग उठें (झाग झुंड) । कुलकोड–शरीर के भेद का कारणभूत नोकर्म वर्गणा के भेद को कुल कहते हैं । इन कुलों की संख्या करोड से कम नहीं होती । मांझ–में । विराने–दूसरे के । विहान–प्रातःकाल । अधर पधर–विना सहारे के । पंच को भखायो–पांचों इन्द्रियों के वशीभूत । भ्रमघेरो–भ्रम ने घेर लिया । वंच–ठगना । द्रोह–हिंसा । परको पिंड–पर का सग्रह ।

पृ० ८३—परावर्त्त पूरणी—केवल पंच परावर्त्तन को पूरण करने वाला। मृगमद्-कस्तूरी। नाभि-हिरण की नाभि। उपखानो-कहावत। तेरे एक ही (जिन देवके)। भूल्यो (डूल्यो)-घूमता रहा। निगोद-साधारण वनस्पति एकेन्द्रिय जीव। ढांकि आयो-उछल आया। अजहूँ तू-(अजहूँन)। सीतवदा सीता-ये नदियों के नाम हैं।

पृ० ८४—भै-डर। कालकूट-जहर। कहरी-आपत्ति का कारण। समाधि (सुभाइ)-ध्यान। चहरी-चहल पहल। उदधि उधान-समुद्र का उठाव। उपल-पाषाण।

पृ० ८५—थलका (थल को)-जमीन पर का। विमल (निर्मल) इधिना-अवधि। अखंड (विमल)-खण्ड रहित। मीढि देखी-सोचकर देखने से। मिथ्याती (अथिर)। नरको वचन (वचन रचन)। शुद्धारथ (सिद्धारथ)। पटंतरो-(आनंतरो)-समान। कंक-क्षत्रिय, एक बड़ा ग्राम। द्यौस-दिन।

पृ० ८६—वानारसी संसार निवास (बदतबानारसी संसार)। पामर वरण-हीनवर्ण। अगाज-अवक्तव्य। ताहि (देखै)-उसे। घुंघची रकत-लाल चिरमी। रीरी-पीतल। पीरी-पीतल। बान-वर्ण-बानी। मुद्रा को मंडान-बाह्य भेष का धारण करना।

पृ० ८७—धुन्ध धावहि-अज्ञान की ओर दौड़ता है। छतो-मौजूद। आहि-है। विवसाव-उद्यम। खीर-दूध। ताव-गर्मी। गुरुज्ञान (गुणज्ञान)। तूही (तू भी)। कहै (मानै)। सुखरथ-सुखदायक सवारी। रंगभूमि-नाट्यशाला।

पृ० ८८—पोत-जहाज। तारिवेको (तरिवेको)। श्रुतलंगर-शास्त्ररूपी लंगर। लै झारसी-(कौ डारसी) डालेगा। विजया-भांग। कंद वृन्द-कंदों का समूह। कसूंभो-लालरंग। मिथ्यासोफो-मिथ्या मत। शीरनी-मिठाई। पंच गोलक-स्कन्ध, अण्डर, आवास पुलवि और शरीर ये उत्तरोत्तर असंख्यातलोक असंख्यात लोक गुणित हैं। इनसे निगोदिया जीवों के शरीरों का परिमाण जाना जाता है। अम्बार-इकट्ठा, ढेर।

पृ० ८९—थोभ-अन्त। बडे वृन्द-बडे लोग। खलक-दुनिया।

पृ० ९०—कौरपाल-कवि के साथी जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। पीताम्बर-एक सज्जन साधर्मी भाई। विजैदशी-आसोज सुदी १०। उडुगन-नक्षत्र।

वेद निर्णय पञ्चासिका।

पृ० ९१—अन्तर-बीच में। गुप्त-नष्ट होगये, लुप्त। मुवा है-मरगया है। उवा-उगा। मंढान-मंडप।

पृ० ९२—थिति-स्थिति। जथा-यथार्थ। मथा-मथन किया है। नभ-आकाश। ध्रुव (ध्रुव)-निश्चल।

पृ० ९३—जुगम-दो। उगिला-उगल दिया है। धरनी-पृथिवी। करण त्रिधा-अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। श्रेणी धारा-क्षपक श्रेणी और उपशम श्रेणी। दोषमुखी-गिरने वाली। मोख मुखी-ऊंचे चढने वाली है। पनविधि (पंचविधि)-पांच प्रकार का।

पृ० ६४—निर्वेद-वैराग्य ।

पृ० ६५—सोम-चन्द्रमा । सुरसे-प्रेम सहित । सीरे-ठंडे। अति-सब । रागद्वेष-(राग वैर) । पोरि-दरवाजा । परद्वार न (परदा न)-परदा नहीं है। कपाटिका-किवाड । वदनपीत-पीला मुंह ।

पृ० ६६—मुख जलप-मुंह से बोलना। अहमेवता-अहकार। धरित्रीपति-राजा। वेवता-जानता। मरोरा-परिवर्तन ।

पृ० ६७—हरि हरि भांति-अहमिन्द्रों की तरह । नावजु (नाउं न) ।

पृ० ६८—जग (जिन) ।

पृ० ६६—मृषामग-झूंठा मार्ग । कहात-कहावत ।

त्रेशठ शलाका पुरुषों की नामावली ।

पृ० १०१—त्रिपृष्टि (त्रिविष्टि) । जिन (जित) ।

पृ० १०२—नेमि नर (नेमि जिन) । जोरकर (रैन दिन) ।

पृ० १०३—त्रिपिष (त्रिविष्ठि) ।

मार्गणा विधान ।

पृ० १०४—विभंगा अवधि-झूठा अवधिज्ञान ।

पृ० १०५—इनरूप रसंग-इन रूप होकर । नटै-नाटक करता है । कारीसादाह-छाणे की आग की ज्वाला । वनदवदाह-वनाग्नि की ज्वाला ।

कर्म प्रकृति विधान ।

पृ० १०८—सुरति-होश ।

पृ० १०६—समतूल-वरावर । दुर्गन्छा-घृणा। पजावा-कुम्हार का हाव ।

पृ० ११०—आलाप (आताप)।

पृ० ११३—नसमाहि (तसमांहि)। सेवट—असंप्राप्तसृपाटिका संहनन।

पृ० ११४—हरुई—हलका।

पृ० ११५—जव (जर)। अमेय—अपरिमित।

पृ० ११६—भाल महँ—माथे में।

पृ० ११७—जुई—जुदी। होवै (पावै)। फल (कुल)। बटमार—लुटेरा।

पृ० ११८—भोग (जोग)। चीन्ह (चीन)।

पृ० ११९—त्रिक (त्रिय) तीन। कहों (करें) (करों)।

पृ० १२०—पंचसंगात (पंच दस गात्त)।

पृ० १२२—चाक (वाक)।

पृ० १२४—जंपों—कहताहूं। पोत—पुत्र।

पृ० १२५—पटतर—उपमा—समानता। तुसार—वर्फ। टोहि—देखकर। धवैं—जलाती है। विग्रह—लड़ाई और शरीर।

पृ० १२६—नीलिया (पीलिया) एक रोग जिससे चीजें पीली दिखने लगती हैं। हेठ—नीचा। वीट—डंठल।

पृ० १२७—देहिं (देव) देते हैं। विज्जु—बिजली। दुस्तर (दुत्तर) जो तैरा नहीं जा सके। झलकंत (मूकंत)। मुंडमाल (रुंड माल)।

पृ० १२८—सेये प्रभु तुमरे पात्र (सेवै तुमसे प्रभु पाय)

साधु वंदना

पृ० १२६—सुमरि आन-स्मरण में लाकर। अवशिक (आवसिक) (आवश्यक)-अवश्य करने योग्य। तिथि असन-खडे २ भोजन करना। लघु असन-हलका भोजन करना। मोच-छोडना। संतत-सदा। मृषा-झूठ। रती-रत्ती भर भी। घटित-घडा हुआ। अघट-नहीं घडा हुआ। फरसै-स्पर्श करे। मदन-काम। प्रासुक-जीव रहित। तपीश (तपसी) तपस्वियों के ईश।

पृ० १३०—निरवद्य-पाप रहित। संचार (साचार) (आचार) जाकर। सुरति-सावधानता। अचेत-जीव रहित। पूरव-कारण। आदान-लेना। नवदुवार- दो आंख, दो कान, दो नाक के छिद्र एक मुंह, गुदा और लिंगेन्द्रिय ये मल बहने के नो द्वार हैं। निहार-टट्टी, पेशाब आदि। हरुव-हलका। सभार-भारी। तपत-गर्म। तुसार-ठंडा। भीत-दिवाल। सुणै (गिणै)।

पृ० १३१—ठानै-करे। प्राछित्त-प्रायश्चित्त। सज्झाउ-स्वाध्याय। निद्राल-निद्रा लेने वाले। वंचै-हरण करता है। मोष-मोक्ष। थिति-खडे होकर।-मल पात-मल का गिरना।

मोक्ष पैडी

पृ० १३२—इक्क-एक। रुचिवंतनो-श्रद्धानवाला शिष्य। अक्खै-कहता है। मल्ल-बहादुर। तुसाडी-तुम्हारी। अल्ल-पहिचान। छयल्ला-छैला। रोचकशिक्खनो-रुचिवाला-शिष्य। मयल्ला-मैला। इसदा-इसका। द्विपद-दो पैर वाला। वयल्ला-

वैल। जिसदौ-जिसका। गिरंदा-गर्द। पेच-मरोड। कलमल्ला-विकल। झलमल्ला-गडबड, अस्पष्ट। जिन्हादी-जिनकी। भूमिनौ-हृदय रूपी भूमिको। कुदल्ला-कुदालो। तिन्हादा-उनका। वहज-रहाव। दुदल्ला-दुविधा सहित। जिन्हा-जिन्होंने। करमदा-कर्म का। दुविधा-दो प्रकार का। मल्ला-अच्छा लगता है। झाक झमल्ला-अच्छा दिखने वाला। अहल्ला-व्यर्थ। वंक कटाछे लोयना-वांके और कटाक्ष सहित आंखों से। मल्ला-माना। कोंदो दल्ला कोदों को दलने के बराबर है।

पृ० १३३—पाहन-पत्थर। चहल्ला-चहल पहल, भीतर में पहुँचना, कीचड। बहल्ला-बह जाता है। अप्पा-अपने को। छल्ला-ठग लिया है। गिरि-पहाड। पया-पडगया। किणि-किसने दित्ता-दिया। टल्ला-धक्का। तल्ला-ताल्लुक संबंध। गरब गहल्ला-अभिमान से पागल। खम-बोझ उठाने वाला। वल्ला-बल्ली जो छप्पर के नीचे लगाई जाती है। घल्ला-नष्ट किया। सुपनैदा-सुपने का। विलल्ला-विलाला। अंबर-कपडा। मल्ला-मलीन। गल्ला-गप्प हांकना। अग्रसोच-निदान। सल्ला-माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य। जियदा-जीवको। उरझल्ला-उलझा दिया। रुधिरादी पुट्टसौ-खून के सपर्क से। रुधिरानल-खून का नाला। होंदी-होगी। करदा-करोगे। कल्ला-गप्प-गरदन। करंदा-करता हुआ।

पृ० १३४—भिंदमकरा-एक प्रकार की मकडी। टांका झल्ला-टांका झालदिया। ठल्लम ठल्ला-ठाला होकर अथवा ठाली बात है।

गल्ला-अनाज वगैरह। मोगर मल्ला-थोथा मोटा। वैसंघा-बालक। बल्ला-बडा। कल्ला-काला। नवल्ला-नया। फल्ला-फलवाला। जल्ला-जलने वाला। दुधा-दो प्रकार का। तुलदा-ताकडी। पल्ला-पालडा। हरु वैतन-हलका। गुरु वैतसौ-भारी। थल्ला-स्थान। दुहु दिशिनो-दोनों ओर। चल्ला-चलायमान। जटल्ला-जटा। परेरै-प्रेरणा पाये हुए। गल्ला-गलना।

पृ० १३५—चहुधा-पानी, आग, पवन और पृथ्वी में। रल्ला-मिला हुआ है। मद मतवल्ला-मदोन्मत्त। दुहुँवादी-दोनों से। समल्ला-मल सहित। खलफल्ला-आकुलता। हल भल्ला-समान भाव अथवा आकुलता दायक समझना। विथार-विस्तार। बुल्ला-बुदबुदा। खल्ला (थल्ला), थल। अरहटहार-अरहट के घडों की माला। भल्ला-अच्छा। वतनु-घर। तुसाडा-तुम्हारा। रोह रुहल्ला-धक्का देना। दुरल्ला-दुर्लभ। चरल्ला-चहल पहल। सहल्ला-सरल।

पृ० १३६—प्रबल्ला-जबर्दस्त। विहंडिया-नाश कर दिया। दुहल्ला-तीव्रदुख। आगि अंगारे-अग्नि के अंगारे में। तूल पहल्ला-रुई का ढेर। सतगुरुदी-सतगुरु की। देशना-उपदेश। आस्रवदी-आस्रव की। वाहि-रोकना। लद्धी-प्राप्त करली। मोखदी-मोचकी।

कर्म छत्तीसी

पृ० १३६—परमसमाधिगत-परम ध्यान को प्राप्त। अगम-जहां जा नहीं सकते। अलोकनभ-अलोकाकाश।

पृ० १३७—अभिधान–नाम। चरम दृष्टि–अंतिम दृष्टि अर्थात् ज्ञान। जगम–चलने वाला। सीरो–ठंडा। हलका (हरुवा)।

पृ० १३८—दुरै–दूर होती है। अकर–अकड। रौंस–रविश।

पृ० १३९—भाल–शिर। बकर कूंदसी–बकरी के कूदने की तरह। मकर चांदनी–कमर राशि की चांदनी। बूढै–डूबता है। भेक–मढक।

ध्यान बत्तीसी

पृ० १४०—निरुपाधि–रागद्वेष रहित। ब्रह्म समाधि–शुद्धात्मा का ध्यान।

पृ० १४१—अलख–अदृश्य। जोवे–देखे। विलेच्छ–विलय करके।

पृ० १४२—अग्रशोच–निदान। हिये–हृदय में। तरंगिनी–नदी सयाने–हे समझदार।

पृ० १४३—छीजा–नष्ट हुआ। वेरा–समय। निवेरा–नाश। विपरीत (विपरति)–व्युपरति–क्रिया–निवृति नाम का चौथा शुक्ल ध्यान।

अध्यात्म बत्तीसी

पृ० १४४—करषै–खींचता है। धाय–दौड कर। पावक–आग। यातैं (यातै) भावकर्म–रागद्वेष। द्रव्य–ज्ञानावरणादि कर्मों का स्कंध। नो कर्म–शरीरादि। तन–शरीर। कारमन–कार्माण। घमी–भूसा, तुष।

पृ० १४५—ढरनि—उतार चढाव, घूम।

पृ० १४६—वाट—मार्ग। उद्घाट—खुलना।

ज्ञान पच्चीसी

पृ० १४७—पवन (पौन) हवा।

पृ० १४८—दाव—जंगल। उपाव कै—उपाय करके। गहि आने—पकड़ता है। साधि—वश में कर के। फेट—सम्मिश्रण। वान—बानी वर्ण। पर्व—पूर्णिमा। अथवा अमावस्या। सूर—सूरज। सोम—चंद्रमा।

पृ० १४९—समोय—मोहित करके। अभ्यासते (परगासतें)। छुड़ावत (छुडावत)

शिव पच्चीसी

पृ० १५०—जह (जहं) जहां। गह (गच) ग्रहण करने से। कुण्डली—सुषुमना नाडी के मूलाधार के निकट की एक कल्पित वस्तु। जलहरी—शिव मूर्त्ति के ऊपर टांगने का मिट्टी का सछिद्र जल घट। उपाधि—परिग्रह, बाह्यवस्तु, धर्म चिन्तना। अव्यापि—सब जगह नहीं रहने वाले। निर्गुण रूप—सत्व रजतम से परे। सगुण स्वरूप—सत्वादि गुण सहित। अगम—ज्ञान का अविषय अथवा पहुँच के परे। पागै—सना हुआ। सिंगी—सींग का बाजा। बाघम्बर—बाघ का चमड़ा। सरवंगो—सर्वांग।

पृ० १५१—पोहै-पोषण करते हैं। विभूति-राख। पंचवदन-पांच मुंह। अंधक हरण-अंधक का नाश करने वाले। त्रिपुर हरण-त्रिपुर नाम के राक्षस का नाश करने वाले। काम दहन-काम को जलाने वाले। कपूर गौर-कपूर के समान गौर वर्ण। जिह ठाव-जिस स्थान में।

भव सिन्धु चतुर्दशी

पृ० १५२—सम्यकवंत को (समकितवंत)। मालीमतहं (मालमतहां) (मालिम तहां)। धुनि-शब्द।

पृ० १५३—वादवान-पाल। चहै (वहै)। गेहै (कटै) (घटै)।

अध्यातम फाग

पृ० १५३ अघट-जो मिल नहीं सकता।

पृ० १५४—विषम-रागद्वेषात्मक। मयसंत-मदवाला। वाउ-हवा। कुहर-कोहरा। दिवशशि-दिन का चांद। सुरति-अनुभव। हिमगिर-हिमालय। वितथ-झूंठ।

पृ० १५५—चाचरि-नौकरानी। धमाल-कलाबाजी, होली का गीत। सीयलो-ठंडा। निरनीति-निर्णय। सुरत-अनुभव। तताई-तातापन। भस्मलेख-धूल की रेखा।

सोलह तिथि

पृ० १५६—रसपागी-अनुभव से भरी हुई। दुहूँधी (दहूंधा) दोनों प्रकार की। त्रिधा-तीन प्रकार। चारै-चार।

पृ० १५७—सिद्धि (रिद्धि)-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ऐशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियां हैं।

तावै-तपावै। काठिया-राहगीरों को लूटने वाले।

तेरह काठिया

पृ० १५७—बटपारें-लूटै। वाट-रास्ता।

पृ० १५८—कोह-क्रोध। विवसाव-उद्यम। आपन (आपा)-खुदको। बटपार-लुटेरा।

पृ० १५९—दुरमति-खोटी बुद्धि।

अध्यातम गीत

पृ० १६० जउ-जो। उनहार-सूरत, समानता। पटतर-समान। भोर-प्रातःकाल। गजगंजन-हाथी को डराने वाला।

पंच पद विधान

पृ० १६२—पंचकरन-पांचइन्द्रिय। उझाझय (उवझाय) उपाध्याय।

पृ० १६३—जस-जिसे। गौन-गौण अमुख्य।

सुमति के देव्यष्टोत्तरशतनाम

पृ० १६४—शोभावती (सोभागवती)।

शारदाष्टक

पृ० १६५—दुर्नैहरा-खोटी नीति को हरण करने वाली।

पृ० १६६—सुधाताप (मुधाताप)। अखैवृत्तशाखा-आत्मवृत्त की डाली। समाधान रूप-समस्याओं का हल करने वाली।

पृ० १६७—निरंका-कलंक रहित। मुदेका-प्रसन्न रहने वाली। निरस्ता निदानी-निदान (भोगों की वांछा) नष्ट करने वाली।

नवदुर्गा विधान

पृ० १६८—गिरिशृंग-पहाड का शिखर। रासभ-गधा।

पृ० १६६—महिषासुर-एक राक्षस। अपरनी-अविवाहित।

पृ० १७०—अनुकंपा-दया। राधै-भगवान की भावना करती है।

नाम निर्णय विधान

पृ० १७१—अलख-जिसे देख नहीं सकते। अलीक-झूंठा।

पृ० १७२—दंभ-पाखण्ड। तिहुंपन-बाल्य यौवन, और वृद्धावस्था। तुव-तुम्हारे।

पृ० १७३-वरुणी-आंखों के आगे के बाल। गोलक-आंख का गोला। गंड-गालों के ऊपर का हिस्सा। श्रौन-कान। अधर-नीचे का ओठ। दशन-दांत। घटिका-गुट्टी, गले की हड्डी। चिबुक-ठोडी।

नवरत्न कवित्त

पृ० १७३—मित्त-मित्र। किज्जय-कीजिए।

पृ० १७४—दिज्जय-दीजिए। आनिय-लाइये। लघुपत-छोटापन। असन लालची-भोजन का लोलुपी। गद-रोग। तकि-ताक कर। चुकि-चूकने वाला। अखै-नहीं नष्ट होने वाली। मसकती (मसकरी)।

पृ० १७५—चर-गुप्तचर। विछोरै-नष्ट करै। पिशुन कर्म-चुगली। गिलै-नष्ट करै। धर्म (कर्म)।

पृ० १७६—लवन-लावण्य। घन-अत्यंत।

अष्टप्रकार जिन पूजन

पृ० १७६—पुष्पशर-पुष्प रूपी तीर।

दशदान विधान

पृ० १७७—भावित रूप-भावमय। वछरा-गायका वछड़ा।

पृ० १७८—पयाना-प्रयाण।

दशबोल

पृ० १७६ छट्ठे दोहे के पहले "जिन धर्म" शीर्षक के नीचे यह दोहा और है। छटा दोहा "आगम" शीर्षक में समझना चाहिए।

जिन धर्म

जो पर तजि आपा भजै, जहां सुदिष्टि जुत कर्म।
अशरण रूप अजोग पथ, सो कहिए जिनधर्म॥

पहेली

पृ० १८०—कंत-पति। अवाची-अवक्तव्य। साल-दुख।

पृ० १८१—विरवा-वृत्त। उलहे-लहलहा रहा है। झकुलाई-हिलता है। उद्धत (अद्भुत)। हौं-मैं। चेरी-दासी।

प्रश्नोत्तर दोहा

पृ० १८२—खोजत (सोधत) दुरिकै-दूररहकर। दुराव-छिपाव। पाहन-पाषाण।

प्रश्नोत्तर माला

पृ० १८२—एम-ऐसे। जेम-जैसे।

पृ० १८३—तितिक्षा-सहनशीलता। मधुप-उद्धव। हरिपांहि-हरि के पास।

पृ० १८४—अछोभी-क्षोभरहित।

अवस्थाष्टक

पृ० १८५—जंगम (संजम)-चलने वाला।

दर्शनाष्टक

पृ० १८६—पाधडी-पादरी। दरवेश-संन्यासी। पूर्व कृत फल उदय (पूर्व कृत कर्म उदय)।

चातुर्वर्ण

पृ० १८७—भुजभार-बाहुबल वाला।

अजितनाथजी के छंद

पृ० १८७—गोयम-गोतम। गणहर-गणधर। पय-पद।

पृ० १८८—रायाजी-राजाजी। महियल-महान। राजिउ-शोभित होते हैं। सय-शत। शिषैराबाद (रिखैराबाद)।

शांतिनाथजिनस्तुति

पृ० १८९—वल्लभ-पति। सहिए-सखी। कलधौत-सुवर्ण। नागरि-श्रेष्ठ।

पृ० १९०—जितमार-काम देव को जीतने वाले। मदन महेश-काम को वश में करने वाले। करवाल-तलवार। मराल-हंस।

पृ० १९१—हीर—हीरा।

नवसेना विधान

पृ० १९१—पत्ति-पयादा। कटक-छावनी।

पृ० १९२—चमूदल-फौज। पायक-पयादे।

कलशों का भाषानुवाद

पृ० १९४—पंचम गति-मोक्ष।

फुटकर कविता

पृ० १९७—परधीन (परधान)। डोबनारसी-डुबोने वाला।

पृ० १९८—दारी-व्यभिचारणी स्त्री। अशरमी-निर्लज्ज। फैल करें-पाखंड करते हैं। बाव-हवा।

पृ० १९९—हमाल-हमाली करने वाला। नवनिज्जै-मक्खन।

पृ० २००—रमही है-रहती है।

पृ० २०१—शीसगर-शस्त्र बनाने वाला। काछी-जाति विशेष। कुंदीगर-कपडे पर कुंदी करने वाले। बारी-पत्तल बनाने वाला। राज-कारीगर, मकान बनाने वाला। सिकलीगर-औजार के धार करने वाला। सत्ततुट्टहि-सडसठ। खिपानहु-क्षय करना। पैडी-प्रकृति।

गोरख नाथ के वचन

पृ० २०२—भग-योनि।

पृ० २०३—कोमल पिण्ड-बच्चा। कठिन पिण्ड-जवान। जूना पिण्ड-पुराना शरीर।

वैद्य आदि के भेद

पृ० २०३—संक्रमण-राशिका बदलना।

पृ० २०४—मुसल्ला-नमाज पढ़ने की दरी।

पृ० २०५—जेर (जोर) (चोर)-जो।

पृ० २०६—कुप्य-चांदी और सोने के अतिरिक्त सब कुछ। पुरीस-टट्टी। सरीस-समान। छेरी-बकरी।

निमित्त उपादान के दोहे

पृ० २२१—उपादान-जो स्वयं कार्य रूप परिणत हो उसे उपादान कारण कहते हैं, जैसे घडे का उपादान मिट्टी है।

निमित्त—जो स्वय कार्य रूप परिणत न हो किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घडे की उत्पत्ति में दण्ड, कुंभार, चाक आदि।

पृ० २२३—पट पेखन-एक प्रकार का खेल। नाहीं वेला (जैसे छैला)।

पृ० २२५—वसन-कपडा। पानी-हाथ। चुरैल का पकवान-जिससे खूब खाने पर भी भूख न मिटे। खेटकी-शिकारी।

पृ० २२६—पिंड-शरीर।

पृ० २२७—रज-मिट्टी। न्यारिया-मिट्टी में से चाँदी सोने को शोधने वाला। झीलै-लवलीन होता है। मनकीलै-मन लगा देता है। भृंगी-भंवरा।

पृ० २२८—पाइ-पैर। बालम-प्यारे। तुहुंतन-तेरा। गागरि-घडा। अंचरा-अंचला। गौ-गया। फहराय-उडकर। पेसिउ-प्रवेश किया। पेलि-पेलकरके। डगरिया-गली।

पृ० २२६—पियरा-पियाका। गरुव-अभिमाना। सचीकन-चिकना। जागलि-जागेगी। जनि-मत अघोर-घोर। तोर-तेरा। मूंसहि-चोरते हैं। सरवस-सबकुछ। कोल किरात-भील वगैरह। अहेर-शिकार। वनसावज-वन में रहने वाला। नचीत-निश्चिन्त। नटकीस-नाटक का पात्र। तोपि- छिपाकर।

पृ० २३०—करवत-करोत। पास-नजदीक। पांचठग-पांच इन्द्रियां। धौरहर-मकान। वेर-देर। निकेतन-मकान। कतहु-कहीं भी। वाट-मार्ग।

पृ० २३१—विरचि-उपेक्षा करके। संभार-संभाल। निखार-हटाना। लगार-जरा भी। छार-राख, मिट्टी। पखार-धोकर। पाट को कीरा-रेशम का कीडा।

पृ० २३२—वलि वलि-वलिहारी। राधारौंन-राधा के रमण अर्थात् परमात्मा। वौनसौं-वमन से। लौन-सौंदर्य। भौन सौं-मकान से। आवागौन-आना जाना। वेव-अनुभव करना

पृ० २३३—भेव-भेद। दिति-दैत्यों की माता। अनिकांछित-इच्छा का भाव। वलखत-रोता है। दरयाव-उदार।

पृ० २३४—चोज-विशेषता।

पृ० २३५—परचै-परिचय। भीमका-हाथी। करषै-खींचै।

परमारथ हिंडोलना

पृ० २३७—षटकील-छह स्थान पर कीलें। मरुवा-छेददार पत्थर जिसमें हिंडोला की रस्सी बांधी जाती है। पाटली-पटिया। कर्म निरोधै-क्रिया को रोकता है।

पृ० २३८—मूलन बेटा जायो-मूल नक्षत्र अर्थात् शुद्धोपयोग। सधो-शुद्धोपयोग। उलफत-प्रेम।